

## भक्ति के नियम

१. भगवान् की भक्ति का प्रचार करना, गो रक्षण और उसके लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना, वैदिक अनुभूत औपधियों का प्रचार करना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैभनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना, सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना, राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना ।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा ।

३. अधिम वार्षिक चन्दा सर्व साधारण सं २) होगा

४. जो महानुभाव २५) या इससे अधिक देंगे वह पत्रके संरक्षक और ५) देने वाले सहायक होंगे ।

५. बाहर का कोई भी व्यापारिक विज्ञापन नहीं

लिया जावगा ।

६. लेखोंको प्रकाशित करना, न करना, घटाना व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा ।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नामसे और प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए

८. जिन माहकों के पास जिस मास की "भक्ति" न पहुंचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस में पूछ कर उस मास की अभावस्था से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये । स्थानीय पोस्ट आफिस में बिना पड़ताल किये अथवा अभावस्था के बाद सूचना आने पर "भक्ति" नहीं भेजी जायगी ।

९. पत्रोत्तर के लिये जवाबी, कार्ड भेजना चाहिये ।

## विषय सूची ।

विषय	लेखक	पृष्ठ	विषय	लेखक	पृष्ठ
१. वेदापदेश		४१३	६. अपने शुभ कर्मा को ईश्वर की भेट करो		
२. भगवद्भक्ति [ले० श्रीस्वामी भोले बाबा जी		४१४	[ ले० स्वामी आत्मानन्द जी		४११
३. अवतार जीवन में साधक भाव और			१०. कहाँ दूँदूँ [ ले० श्री प्रभुदत्त जी भारद्वाज		४१३
श्रीराम कृष्ण [ले० श्रीस्वामी मेघेश्वरानन्द		४११	११. सफल जीवन (कविता) [ ले० श्री शोभाराम		४१४
४. कावित्त (कविता) [ले० श्रीदुर्गाप्रसादजीगुप्त		४१३	जी धेनुसंबक		
५. वराह अवतार [ ले० श्रीमती बहिन जयदेवी		४१४	१२. भजन		४१५
६. भक्ति [ ले० पं० बालरामजी शास्त्री		४१६			
७. सगुणप्रेम प्याला [ले० एक प्रेम विह्वल शिशु		४१६			
८. वंशी वाले ( कविता ) [ ले० श्री मदन					
गोपाल 'सिंहल'		४१०			

## भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें ।

क्र.सं.	पुस्तक का नाम	मूल्य
१.	भगवद्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहिता	॥२॥
२.	भगवद्गीता दशम अध्याय पर्यन्त ...	" १॥
३.	वेदोपनिषद् ...	" १॥
४.	अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला ...	" १॥
५.	ज्ञानधर्मोपदेश ...	" १॥
६.	भक्ति ज्ञान योग संग्रह ...	" २॥
७.	सत्य शब्द संग्रह (गुटका) ...	" १॥
८.	सत्य शब्द संग्रह ...	" १॥
९.	शब्दसंग्रह ...	" १॥
१०.	सारसंग्रह ...	" २॥
११.	भाषा फक्तिका प्रकाश ...	" १॥
१२.	भगवद्भक्तांक ...	" १॥
१३.	भगवदंक ...	" १॥
१४.	गवांक ...	" १॥

नोट:-एक रुपये से कम मूल्य की पुस्तक मंगाने वालों को डाक महसूल सहित टिकट भेजने चाहियें ।

मिलने का पता:-

श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी ।



0  
1  
2  
3  
4  
5  
6  
7  
8  
9  
10  
11  
12  
13  
14  
15  
16  
17  
18  
19  
20  
21  
22  
23  
24  
25  
26  
27  
28  
29  
30  
31  
32  
33  
34  
35  
36  
37  
38  
39  
40  
41  
42  
43  
44  
45  
46  
47  
48  
49  
50  
51  
52  
53  
54  
55  
56  
57  
58  
59  
60  
61  
62  
63  
64  
65  
66  
67  
68  
69  
70  
71  
72  
73  
74  
75  
76  
77  
78  
79  
80  
81  
82  
83  
84  
85  
86  
87  
88  
89  
90  
91  
92  
93  
94  
95  
96  
97  
98  
99  
100  
101  
102  
103  
104  
105  
106  
107  
108  
109  
110  
111  
112  
113  
114  
115  
116  
117  
118  
119  
120  
121  
122  
123  
124  
125  
126  
127  
128  
129  
130  
131  
132  
133  
134  
135  
136  
137  
138  
139  
140  
141  
142  
143  
144  
145  
146  
147  
148  
149  
150  
151  
152  
153  
154  
155  
156  
157  
158  
159  
160  
161  
162  
163  
164  
165  
166  
167  
168  
169  
170  
171  
172  
173  
174  
175  
176  
177  
178  
179  
180  
181  
182  
183  
184  
185  
186  
187  
188  
189  
190  
191  
192  
193  
194  
195  
196  
197  
198  
199  
200  
201  
202  
203  
204  
205  
206  
207  
208  
209  
210  
211  
212  
213  
214  
215  
216  
217  
218  
219  
220  
221  
222  
223  
224  
225  
226  
227  
228  
229  
230  
231  
232  
233  
234  
235  
236  
237  
238  
239  
240  
241  
242  
243  
244  
245  
246  
247  
248  
249  
250  
251  
252  
253  
254  
255  
256  
257  
258  
259  
260  
261  
262  
263  
264  
265  
266  
267  
268  
269  
270  
271  
272  
273  
274  
275  
276  
277  
278  
279  
280  
281  
282  
283  
284  
285  
286  
287  
288  
289  
290  
291  
292  
293  
294  
295  
296  
297  
298  
299  
300  
301  
302  
303  
304  
305  
306  
307  
308  
309  
310  
311  
312  
313  
314  
315  
316  
317  
318  
319  
320  
321  
322  
323  
324  
325  
326  
327  
328  
329  
330  
331  
332  
333  
334  
335  
336  
337  
338  
339  
340  
341  
342  
343  
344  
345  
346  
347  
348  
349  
350  
351  
352  
353  
354  
355  
356  
357  
358  
359  
360  
361  
362  
363  
364  
365  
366  
367  
368  
369  
370  
371  
372  
373  
374  
375  
376  
377  
378  
379  
380  
381  
382  
383  
384  
385  
386  
387  
388  
389  
390  
391  
392  
393  
394  
395  
396  
397  
398  
399  
400  
401  
402  
403  
404  
405  
406  
407  
408  
409  
410  
411  
412  
413  
414  
415  
416  
417  
418  
419  
420  
421  
422  
423  
424  
425  
426  
427  
428  
429  
430  
431  
432  
433  
434  
435  
436  
437  
438  
439  
440  
441  
442  
443  
444  
445  
446  
447  
448  
449  
450  
451  
452  
453  
454  
455  
456  
457  
458  
459  
460  
461  
462  
463  
464  
465  
466  
467  
468  
469  
470  
471  
472  
473  
474  
475  
476  
477  
478  
479  
480  
481  
482  
483  
484  
485  
486  
487  
488  
489  
490  
491  
492  
493  
494  
495  
496  
497  
498  
499  
500  
501  
502  
503  
504  
505  
506  
507  
508  
509  
510  
511  
512  
513  
514  
515  
516  
517  
518  
519  
520  
521  
522  
523  
524  
525  
526  
527  
528  
529  
530  
531  
532  
533  
534  
535  
536  
537  
538  
539  
540  
541  
542  
543  
544  
545  
546  
547  
548  
549  
550  
551  
552  
553  
554  
555  
556  
557  
558  
559  
560  
561  
562  
563  
564  
565  
566  
567  
568  
569  
570  
571  
572  
573  
574  
575  
576  
577  
578  
579  
580  
581  
582  
583  
584  
585  
586  
587  
588  
589  
590  
591  
592  
593  
594  
595  
596  
597  
598  
599  
600  
601  
602  
603  
604  
605  
606  
607  
608  
609  
610  
611  
612  
613  
614  
615  
616  
617  
618  
619  
620  
621  
622  
623  
624  
625  
626  
627  
628  
629  
630  
631  
632  
633  
634  
635  
636  
637  
638  
639  
640  
641  
642  
643  
644  
645  
646  
647  
648  
649  
650  
651  
652  
653  
654  
655  
656  
657  
658  
659  
660  
661  
662  
663  
664  
665  
666  
667  
668  
669  
670  
671  
672  
673  
674  
675  
676  
677  
678  
679  
680  
681  
682  
683  
684  
685  
686  
687  
688  
689  
690  
691  
692  
693  
694  
695  
696  
697  
698  
699  
700  
701  
702  
703  
704  
705  
706  
707  
708  
709  
710  
711  
712  
713  
714  
715  
716  
717  
718  
719  
720  
721  
722  
723  
724  
725  
726  
727  
728  
729  
730  
731  
732  
733  
734  
735  
736  
737  
738  
739  
740  
741  
742  
743  
744  
745  
746  
747  
748  
749  
750  
751  
752  
753  
754  
755  
756  
757  
758  
759  
760  
761  
762  
763  
764  
765  
766  
767  
768  
769  
770  
771  
772  
773  
774  
775  
776  
777  
778  
779  
780  
781  
782  
783  
784  
785  
786  
787  
788  
789  
790  
791  
792  
793  
794  
795  
796  
797  
798  
799  
800  
801  
802  
803  
804  
805  
806  
807  
808  
809  
810  
811  
812  
813  
814  
815  
816  
817  
818  
819  
820  
821  
822  
823  
824  
825  
826  
827  
828  
829  
830  
831  
832  
833  
834  
835  
836  
837  
838  
839  
840  
841  
842  
843  
844  
845  
846  
847  
848  
849  
850  
851  
852  
853  
854  
855  
856  
857  
858  
859  
860  
861  
862  
863  
864  
865  
866  
867  
868  
869  
870  
871  
872  
873  
874  
875  
876  
877  
878  
879  
880  
881  
882  
883  
884  
885  
886  
887  
888  
889  
890  
891  
892  
893  
894  
895  
896  
897  
898  
899  
900  
901  
902  
903  
904  
905  
906  
907  
908  
909  
910  
911  
912  
913  
914  
915  
916  
917  
918  
919  
920  
921  
922  
923  
924  
925  
926  
927  
928  
929  
930  
931  
932  
933  
934  
935  
936  
937  
938  
939  
940  
941  
942  
943  
944  
945  
946  
947  
948  
949  
950  
951  
952  
953  
954  
955  
956  
957  
958  
959  
960  
961  
962  
963  
964  
965  
966  
967  
968  
969  
970  
971  
972  
973  
974  
975  
976  
977  
978  
979  
980  
981  
982  
983  
984  
985  
986  
987  
988  
989  
990  
991  
992  
993  
994  
995  
996  
997  
998  
999  
1000

# भक्ति



प्रेम और प्रलय

वर्ष

पाठ

ता





जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका ।

वर्ष ५

श्री भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, भावण पूर्णिमा सं० १९८८

{ अङ्क ११

### वेदोपदेश

व्रतेन दीक्षा माप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम् ।  
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्य माप्यते ॥ १ ॥

व्रत से अधिकार के फल को पाता है, फल की प्राप्ति से सत्कार को पाता है, सत्कार से श्रद्धा को पाता है और श्रद्धा से सत्य को प्राप्त होता ॥ १ ॥

यदा ते हर्यता हरि वा वृधा ते दिवे दिवे ।  
आदित्से चिरवा भुवनानि पंमिरे ॥ २ ॥

हे इन्द्र परमेश्वर ! आप के अनन्त बलसे सब संसार का धारण, आकर्षण और पालन होता है इस कारण से सब लोक अपनी २ कक्षा और स्थान से इधर उधर चलायमान नहीं होते ॥ २ ॥

यदा सूर्य ममं दिवि शुक्रं ज्योतिरधारयः ।

आदित्ते विरवा भुवनानि येमिरे ॥ ३ ॥

हे परमेश्वर ! जब उन सूर्य आदि लोकों को रचा और आप अपनी अनन्त सामर्थ्य से धारण कर रहे हो इस के अनन्तर सारे लोकों का आकर्षण से धारण करते हैं ॥ ३ ॥

कासीत् प्रमा प्रतिमा किं निदानमाज्यं किमासीत् परिधिः क आसीत् ।

छन्दः किमासीत् प्रउगं किमुक्त्यं यदेवा देवमयजन्तः ॥ ४ ॥

प्रमा क्या है, और प्रतिमा क्या चीज़ है, जिस से कार्य उत्पन्न होता है वह क्या है, सार वस्तु क्या है, परिधि किस को कहते हैं स्वतंत्र वस्तु क्या है, प्रयोग और स्तुति करने योग्य क्या है ? इन का उत्तर है कि जिस को सब लोग पूजते हैं वही प्रमा आदि नाम वाला है ॥ ४ ॥

तेजोसि तेजो मयि धेहि वीर्यमसिवीर्यमयि धेहि बलमसि बलं मयि धेहि ।

ओं त्रोऽस्यो त्रो मदि धेहि मन्युरसि मन्यु मयि धेहि सहोऽसी सहो मयी धेहि ॥

हे परमेश्वर ! आप तेज रूप हैं मुझे तेज रूप काजिये पुरुषार्थ रूप हैं पुरुषार्थ दीजिये, बल रूप हैं बल दीजिये, सामर्थ्य के निवास हैं सामर्थ्य दीजिये, कोप रूप हैं दुष्टों पर क्रोध दीजिये, सहन करने हारे हैं सहन शक्ति दीजिये ॥ ५ ॥

## भगवद्भक्ति

[ले० श्री पूज्य स्वामी भोले बाबा जी]

कथा काग भुशुण्ड जी की ।

कागभुशुण्डजी का कथा और महिमा पुराणों में विस्तार से वर्णन की गयी है, यहाँ धाम निष्ठा के सम्बन्ध में प्रयोजन मात्र कहता हूँ । पूर्व जन्म में यह

अयोध्यापुरी में शूद्र कुल में उत्पन्न हुये थे। किसी दुःख के कारण से यह उज्जैन में जारहे। एकवार शिवमन्दिर में जप करते समय इनके गुरु आगये। जब इन्होंने गुरु को दंडवत् न किया, तो शिव जी ने शाप दिया कि दश हजार वर्ष तक सर्पादिक योनियों में इसका जन्म हो पाँछे गुरु ने शिव जी को बहुत स्तुति की जब शिवजी प्रसन्न होकर कहने लगे कि कि हे परोपकारी ब्राह्मण वर मांग। गुरु ने प्रथम शिवजी से भक्ति मांगी और फिर इस शूद्र के कल्याण के लिये धिनय की। शिवजी ने तयास्तु कहा और शूद्र को आषा दी कि तेरा जन्म अयोध्या पुरी में हुआ है



और वहाँ का यह प्रताप है कि यदि किसी जन्म में एकबार अयोध्यापुरी में बस जाय तो निश्चय रघुनन्दन स्वामी का भक्त होकर कृतार्थ हो जाता है और जन्म मरण से छूट जाता है। भगवत् का भी वचन है कि यद्यपि सब ने वैकुण्ठ का वर्णन किया है परन्तु अयोध्या के समान मुझे वैकुण्ठ प्यारा नहीं है। इस अयोध्यापुरी के प्रताप और मेरी कृपा से तुम्हें वह परमगति प्राप्त होगी, जिसका कभी क्षय नहीं होता अर्थात् श्रीरघुनन्दन स्वामी के चरणों में निश्चला भक्ति होगी परन्तु तू फिर कभी साधु ब्राह्मण की अवस्था मत कोजो क्योंकि साधु ब्राह्मण भगवत् स्वरूप हैं।

पश्चात् शिव जी के वचनानुसार कागभुशुरिड जी ने सर्पादिक अनेक देहें पायीं और अन्त में ब्राह्मण के वंश में उनका जन्म हुआ। जब उनके माता पिता मर गये तब वे वन को चले गये जो कोई ऋषोश्वर मिलता, इस से श्रीरघुनन्दन स्वामी के चरित्र पूछते। अन्त में इनको लोमश ऋषि के दर्शन हुये और इनसे उन्होंने अपने मनका अभिप्राय प्रकट किया। ऋषिने पहिले कुछ सगुण उपासना का वर्णन किया और पीछे निर्गुण ब्रह्म का वर्णन करना आरंभ किया। कागभुशुरिड जी ने कहा कि महाराज ! मैं सगुण-उपासक हूँ, मेरा मन मीत के सदृश रामचरित्र रूपी जल से अलग नहीं होसका। यह सुन कर ऋषोश्वर थोड़ी सी सगुण उपासना वर्णन करके फिर निर्गुण ब्रह्म का वर्णन करने लगे। कागभुशुरिड ने इस निर्गुण मत को खंडन करके सगुण उपासना का मंडन किया। ऋषोश्वर ने सगुण उपासना का खंडन करके निर्गुण मत का मंडन किया। इस प्रकार इन दोनों में बहुत देर तक

वाद विवाद हुआ। अन्त में ऋषोश्वर क्रोधित होकर कहने लगे कि तू काग के समान अपनी ही काँव र करता है और मेरी सच्ची बात नहीं सुनता, इस लिये तू तुरन्तही काग होजा। उसी घड़ी इनका शरीर काग का होगया। भगवद्भक्तों को किसी के साथ वैर भाव नहीं होता, इसलिये उन्होंने कुछ चिन्ता न की और ऋषोश्वर को दूर डवत् करके अपनी राह ली।

श्रीरघुनन्दन स्वामी ने इस परीक्षा में जब कागभुशुरिड जी को सच्चा पाया तो उन्होंने लोमश ऋषि की मति फेर दी अर्थात् ऋषोश्वर इनकी यह सहिष्णुता और धीरता देख कर लजित हुये और अपने पास बुलाकर उन्होंने भाषावासन दिया और बालरूप भगवान की उपासना और राममंत्र का उपदेश किया, पश्चात् रामचरित्र सुना कर यह आशीर्वाद दिया कि तुम्हारे हृदय में राम-भक्ति दृढ़ बसो रहेगी, तुम रघुनन्दन स्वामी के प्यार होगे, जो इच्छा करोगे, वह पूर्ण होगी और मृत्यु तुम्हारे आधीन रहेगी, ज्ञान वैराग्य तुम को सदा बना रहेगा, तुम्हारे स्थान के चार २ कोस तक माया नहीं व्यापेगी और रघुनन्दन स्वामी के सब गुण चरित्र तुम को अनायास प्राप्त रहेंगे। जब ऋषोश्वर ने यह आशीर्वाद दिया, इसी समय आकाशवाणी हुयी कि ऐसा ही होगा क्योंकि यह मेरा अनन्य भक्त है।

पं.छे कागभुशुरिड जी ने ऋषोश्वर के चरणों को दंडवत् करके सुमेरु के निकट नीलाचल पर्वत पर जाकर वास किया, बहुत कल्प बीत गये, अभी तक वहाँ हैं। रघुनन्दन स्वामी का कीर्तन किया करते हैं। इनके स्वसंग से महा अधम जीव भी



जीवन्मुक्त पद्यों को पहुंच गये हैं। शिवजी ने हंस रूप होकर इन से राम चरित्र सुनाया। एक बार गुरुजी भगवत् के समीपी होकर भी ऐसी माया में पड़ गये थे कि शिव, ब्रह्मा आदिक भी उपदेश न कर सके परन्तु कागभुशुण्ड जी की कृपा से गुरुजी की माया दूर हो गयी। यद्यपि कागभुशुण्ड जी को सब प्रकार का वरदान मिला हुआ था, फिर भी भगवत् माया ने इनको ऐसा नचाया कि बुद्धि का दीपक ठंडा हो गया। यह माया भगवत्को का कुछ बिगाड़ नहीं कर सकी, क्योंकि भक्तों की भगवत् स्वयं रक्षा करते रहते हैं, इसलिये इस माया से भी कागभुशुण्डजी का परम कल्याण ही हुआ।

हे मंसाराम! जब भक्त को थोड़ा सा भी अभिमान होता है तब भगवत् अपनी माया से उस अहंकार को दूर कर देते हैं, यदि भगवत् ऐसा न करें, तो भक्त दोनों लोकों से भ्रष्ट हो आय। जैसे बालक के फोड़े को उस की माता चिरवाती है और थोड़ी सी पीड़ा होने से बालक का सदा का दुःख दूर हो जाता है, इसी प्रकार भक्तों को किसी प्रकार का कष्ट होना भक्ति को बढ़ाता है और परम कल्याणदायक होता है। हे मंसाराम! भगवत्दाम की यह महिमा है कि जिस पद को ब्रह्मादिक भी नहीं पाते, वह पद्यों धाम की महिमा से भक्त को सहज ही प्राप्त हो जाती है।

धु-महिमा भगवत्दाम की, अद्भुत् अद्भ्य अपार ।  
 सेवत भगवत्दाम जं, भव से होते पार ॥  
 भव से होते पार, विष्णु पद अद्भ्य पाते ।  
 काग चरित्र पवित्र, धाम महिमा जतभाते ॥  
 भोला ! बस हरि धाम, रामपुर कागा जन्मा ।  
 लोमहा दीन्हा शाप, बदी कागा की महिमा ॥

## कथा भगवन्त की ।

भगवन्त जी आगरे के सूवे के 'दीवान परम भक्त थे, कुँज बिहारी जी के चरित्र गाया करते थे, उनके स्वरूप का ध्यान किया करते थे और प्रिया प्रियतम के परस्पर प्रेम में दिन रात मग्न रहते थे, सिवाय प्रिया प्रियतम के दूसरे में भूल के भी चिन्त नहीं लगाते थे, विधि निषेध से अलग रह कर युगल स्वरूप के माधुरी रस में लुके रहते थे, वेष्णव वेप धारण किये हुये भजन भाव का मन में विश्राम रखते थे। प्रिया प्रियातम में जैसा इन का भाव था वैसा ही भाव श्रीवृन्दावन धाम में था। जो कोई वहां का रहने वाला उनके स्थान पर आता, उसको भगवत् रूप जान कर दिव्य पदार्थ उसके आगे धरते और अत्यंत प्रेम से उसकी सेवा करते थे।

गोविन्द देवजी के मन्दिर के अधिकारी स्वामी हरिदास जी जो प्रेम और भक्ति में अद्वैत और भाव में अनन्य भगवन्त जी के गुरु थे, जिन से स्वयं दूध भात मांग कर भगवत् ने भोग लगाया था, एक दिन आगरे में आये। यह सुन कर भगवन्त जी बहुत प्रसन्न हुये और अपनी लोसे संमति पूछी गुरुजी को भेंट में क्या दिया जाय। इस बड़-भागिनी ने उत्तर दिया कि एक २ घोली शगीर पर रहने दो और सब घरबार, सभान्ति, हाथी, घोड़े गुरुजी को भेंट करदो। यह सुन कर भगवन्त जी बहुत प्रसन्न हुये और कहने लगे कि प्रेम और भक्ति का रस भगवत् ने तेरे हां भाग में लिख दिया है। इन दोनों का विचार स्वामी हरिदास जी ने भी सुना, यह सुन कर वे बहुत प्रसन्न हुये परन्तु उनका धनादिक लेना अनुचित समझ कर उनके



घर न गये किन्तु श्री वृन्दावन को लौट आये। भगवन्त जी गुरु के न आने से बड़े उदास और शोकातुर होकर सूबे से बिदा माँग कर वृन्दावन में आये, यात्रा करके भाँतिर के भगवद्भाव और चरित्रों को सुन कर आनन्दित हुये और आप भगवच्चरित्रों की रचना करके भगवत् के भेट किये।

एक बार कई ब्रजवासी चोरी के कारण आगरे के कारागार में बन्द थे, भगवन्त जी ने जाकर उन्हें छुड़ा दिया। एकबार ब्रजवासियों ने इनकी सब वस्तुयें चुगलौं। भगवन्त जी बड़े आनन्द और प्रेम में मग्न होकर कहने लगे कि उस चित्त चोर मोहन नन्दकिशोर ने मेरे धन को गोपियों के माखन सदृश समझा। भगवन्त जी का ऐसा भाव था, अब उनके पिता माधवदास जी का वृत्तन्त कहता हूँ, सुन:-

जब उनके देहान्त का समय आया, तो इनकी चेष्टा समझ कर लोग उनको पालकी में बैठा कर वृन्दावन को ले चले। जब आधी दूर पहुँचे तो इनको होश आया, पूछने लगे कि कहां लिये जाते हो? उत्तर मिला कि जिस धाम का रात दिन ध्यान किया करते हो, इसी धाम को लिये जाते हैं। माधवदास जी कहने लगे कि शंभू लौट चलो, मेरा शरीर वृन्दावन के योग्य नहीं है क्योंकि जब शरीर जलाया जायगा और दुर्गंध उठेगा, तो प्रिया प्रियतम के खेल और विहार में भंग पड़ेगा, इसलिये इस शरीर को वृन्दावन में ले जाना कदापि उचित नहीं है और यदि वृन्दावन में जाना ही है, तो जाने वाला आप से आप युगल स्वरूप के पास पहुँच जायगा, इतना कह कर शरीर को त्याग कर माधवदास जी नित्य विहार में

जा मिले।

कुं-जैसे माधवदास थे, तैसे सुत भगवन्त।  
शेनों ही तन त्याग कर, पाया धाम अनन्त ॥  
पाया धाम अनन्त, प्रिया प्रियतम के प्यारे।  
करते नित्य विहार, होत रहि हरि से न्यारे ॥  
भोला ! करि हरि भक्ति, त्याग जग ममता ऐसे।  
माधव माधव पुत्र, तजी धन ममता जैसे ॥

### कथा हरिदास जी की।

हरिदास जी जाति के वैश्य काशी के निकट के रहने वाले राधावल्लभी संप्रदाय में परमभक्त थे, अगणित गुण और गूढ़ भगवच्चरित्रों का सार जानने वाले थे। इन्होंने डंका देकर अपना प्रण पूरा किया और राधावल्लभ जी के भजन का प्रताप दिखलाया। यह भगवद्भजन में दृढ़ और कलियुग में कामधेनु के सदृश थे। इन्होंने प्रण किया था, कि वृन्दावन में देह त्याग करूँगा। संयोग वश इन को इयर हुआ और जब वेदों ने औषध देने से हाथ खींच लिया तब डोलों में बैठ कर भगवच्चरणारविन्द में मन लगा कर वृन्दावन चले, बीच में ही प्राण छूट गये परन्तु प्रण पूर्ण करने के लिये वैसा ही शरीर बनाकर वृन्दावन में आये और श्री राधावल्लभलाल जी और गोसाईं सुन्दरदास अपने गुरु के प्रेम और भाव से दर्शन करके सत्संग और भगवच्चरित्रों के सुख प्राप्त किये और चौरघाट पर स्नान करके इस देह को छोड़ दिया। जब इनके साथी लाश को जला कर रोते हुये वृन्दावन में आये तब गोसाईं जी ने कहा कि तुम उनके प्रण की चिन्ता मत करो, कल हरिदास जी हमारे पास आये थे, बात चीत करके भगवत् दर्शन किये, यमुना जी में



स्नान करके देह त्याग कर दिया। सबको यह सुन कर भगवद्भजन में विश्वास हुआ।

मंसाराम- महाराज! जब हरिदास ऐसे समर्थ थे कि दूसरा शरीर धारण कर लिया, तो पहिले शरीर से ही वृन्दावन में क्यों नहीं आये?

मस्तराम- भाई! हरिदास जी को अपना प्रण पूरा करने की ऐसी लाग नहीं थी, चाहे प्रण पूरा हो या न हो परन्तु भगवत् को उनका प्रण पूरा करने की लाग थी क्योंकि भगवत् का पूराणों में वचन है कि मैं अपने भक्तों के प्रण को पूरा करता हूँ, सिवाय इसके भगवत् को यह बात जगत् में फैलानी थी कि मेरे भक्तों का प्रण कभी मिथ्या नहीं होता, एक तनु छोड़ कर दूसरे शरीर से वृन्दावन आगये, इस में हानि ही क्या हुई? भगवद्भक्त भगवत् को प्राप्त होते हैं, इस में संशय नहीं है।

कुं-स्वामी श्री हरिदास जी, भगवत्धारणन नेह ।  
प्रण पूरा अपना किया, भारी दृती देह ॥  
भारी दृती देह, धाम वृन्दान आये ।  
धमुना जी में ग्हाय, धाम वैकूट सिधाये ॥  
भोला ! भगवत् ध्यान, सदा कर होनिपकामो ।  
भीष्म प्रतिज्ञा हेतु, उवाच प्रण अपना स्वामी ॥

### कथा मधुगोसाई की ।

मधुगोसाई जी मधु श्रीरंग विक्रपाल थे, प्रियाप्रियतम के परम रसिक थे। घर बार छोड़ कर बंगाले से वृन्दावन में आये। जब यह यात्रा और दर्शन कर चुके तब इनको साक्षात् दर्शनों की चाह हुई और व्रज किशोर, व्रज किशोरी को परम मनोहर मूर्ति के ध्यान में छोड़े हुये घन और कुंजों में उनको हूँदते हुये फिरने लगे, खाने, पाने, सोने,

शीतोष्ण का विचार मन से दूर कर दिया। जब भगवत् ने ऐसा भक्तिभाव और प्रीति अपने भक्त की देखा तो यमुना किनारे चंशीवट के निकट इस स्वरूप से दर्शन दिया कि परम शोभायमान श्याम सुन्दर स्वरूप, माथे पर मुकुट, कानों में कुंडल, स्वर्णतारों का बाग, घुटन्या पहिने हुये, मणिगण के आभूषण सब अंगों पर शोभित, एक हाथ में मुरली दूसरे में छड़ी, अपने सबानों के साथ हंसी खेल कर रहे हैं। यह रूप अनूप देख कर गोसाई जी ब्रह्मानन्द में मग्न वेसुधि होकर दौड़े और चरणारविन्दों में लिपट गये। उनके माथ्य की बड़ाई किस प्रकार कही जाय कि जिस पूर्ण ब्रह्म सच्चिदानन्दघन के चरण रज की ब्रह्मादिक वाञ्छा करते हैं, वे ही भक्ति और प्रेम के वश होकर आप प्रकट हुये।

कुं-मधुगोसाई भक्तवर, भक्ति प्रेम रस चर ।  
मन मोहन लोमत फिरे, इन्द्रों से रह दूर ॥  
इन्द्रों से रह दूर, ध्यान भगवत् का कीन्हा ।  
अनुत रूप अनूप, श्याम ने दर्शन देन्हा ॥  
देखा रूप अनूप, देह की सुधि बिसराई ।  
भोला ! भक्त श्रीकृष्ण, पथा श्री मधु गोसाई ॥

### कथा भूगर्भ की ।

भूगर्भ जी गोसाई परम माधुर्य उपसक थे। घर बार छोड़ कर वृन्दावन में आये, सिवाय परम धाम के दूसरो ओर चित्त न दिया। किसी पुराण का वचन है कि वृन्दावन से बाहर यदि करोड़ों चिन्तामणि मिलते हैं तो भी वृन्दावन की रज से शरीर कभी अलग न हो। इसी वृद्धभाव से गोविन्द देव जी की कुंज में वास करके मानसी भाव से रूप



माधुरी प्रियाप्रियतम में गूर्गभजी बेसुधि रहते थे, खाने पीने को सुधि भी विशेष करके भूल जाते थे। रूप अनूप के चिंतन में चित्त वृत्तियां ऐसी लगाईं कि कमी चलायमान न हुई। हे मंसाराम ! इनके सिवाय काशोत्तर, प्रबोधानन्द और लालमनो भी

धाम निष्ठा के भक्त हो चुके हैं। धाम में प्रीति करने से अवश्य ही भगवत् की प्राप्ति होती है, इस में संदेह नहीं है।

श्री०—जैसे प्यारे श्याम हैं, जैसे प्रिय हैं धाम।

भोला ! कुछ संशय नहीं, नर पावे विधाम ॥

## अवतार जीवन में साधक भाव और श्रीराम-कृष्ण

[ले० श्री स्वामी मेवेश्वरानन्द जी]

### गतांक से आगे ।

इसी प्रकार से आप जब सिरासन में बैठ गये तब मारने आपको छलना शुरू किया। मार से आपकी लड़ाई शुरू हुई अन्त में मार को परास्त करके आपने चोचिसरय को लाभ किया। यही है उनके साधक जीवन का संक्षिप्त इतिहास ! केवल कठोर तपस्या देववाणी और मारके साथ संप्राम की रूपक कहानी के सिवाय उनके साधक जीवन के इतिहास से हमें और कुछ भी नहीं मिलता। भगवान् श्रीकृष्ण चैतन्य का साधक जीवन भी बहुत प्रकार की रूपक कहानियों से भरा हुआ है। उनके साधक जीवन के इतिहास से हमें यह नहीं जान पड़ता कि दुर्लभ वैराग्य को प्राप्त होकर जब वे पिता, माता, स्त्री पुत्रादि प्रिय परिजन और प्यारी वस्तुओं को छोड़ कर पराशान्ति लाभ रूप एक लक्ष्य होते हुये संसार के बाहर चले आये तब आशा, निराशा, हर्ष, निरानन्द, विश्वास, अविश्वास और संकल्प, दिल्पादि द्वन्द्व रूपी वायु ने उनके चित्त रूपी समुद्र में कितना अनुकूल और प्रतिकूल

तरंगों की सृष्टि की, हमें यह नहीं जान पड़ता कि स्थिर लक्ष्य के होने के कारण किस तरह ये धीरे स्थिर कदमों को बढ़ाते हुये बाधा विघ्न रूपी तमाम तरंगों को पार कर आगे ही बढ़ाते रहे। हमें यह नहीं जान पड़ता कि स्थूल, सूक्ष्म, सूक्ष्मतरादि क्रम की हजारों वासनायें किस तरह से उनको प्रलुब्ध करने की मानी मृत होकर उनके सामने खड़ी होने पर वे साधारण मनुष्य की भाँति अपनी हार्दिक दुर्बलताओं से पीड़ित होकर भी, स्थिर लक्ष्य होने के कारण, समुद्र गामिनी नदी की तरह, अपने जीवनादर्श की ओर ही चलते रहे। हमें यह नहीं जान पड़ता कि भाँति भाँति की साधना से उनका मन सुसंस्कृत होने के कारण चित्त वृत्तियाँ ज्यों ज्यों शान्त होने लगीं त्यों त्यों नित्य नूतन आध्यात्मिक उपलब्धि से उनके हृदय पर से अज्ञान रूपी पर्दा घटता रहा और अन्त में अद्वैत रूप द्वीप दिवाकर उदय होकर उनके हृदयाकाश से विचित्र ज्ञान रूपी अज्ञान-अमानिशा का अन्त कर दिया और



हम यह भी नहीं जानते कि पूर्ण स्वरूप को उपलब्धि से पूर्ण स्वरूप बन कर उनके समाहित मन व्युत्थित होकर इस जगत वैचित्र्य में लीट आये और देखा कि सारी विचित्रता के भीतर और बाहर एक ब्रह्म-सत्त्व ही विराजमान है। इस प्रकार से जब वे वाहा और अन्तर्जगत के पदों को उठाकर हरेक व्यक्ति और वस्तु में एक ब्रह्म का ही पूर्ण प्रकाश देखते हैं जब वे देखते हैं कि वे सारे भूतों में और सारे भूत उनमें हैं तब उनकी भेद दृष्टि का अन्त हो जाता है उनके पास हेय उपदेय कुछ भी नहीं रह जाता ब्रह्मविस्त वे ब्रह्म ही हो जाते हैं। ऐसी चरम उपलब्धि के पश्चात् उनका हृदय अनन्त करुणा और प्रेम में भरजाता है तभी तमाम दुःख का मूल कारण अज्ञान रूपी समुद्र में पतित जीवों का उद्धार करने के लिये बस वे देश काल और पात्रानुसार जीवों को चरम लक्ष्य पर पहुँचाने लायक कोई सहज सरल और सुगम रास्ता बतलाते हैं। अतः हम देखते हैं कि अवतारी पुरुष के जीवन के और अंश को न्याय उनके जीवन के साधन काल के इतिहास की भी हमें आवश्यकता है। वलिक उनके जीवन का इस अंश में हम अधिकतर लाभवान होते हैं क्योंकि मनुष्य शरीरधारी अवतारी पुरुष के देवत्व में अल्प संख्यक जन ही विश्वास कर सकते हैं। जो मनुष्य उनके देवत्व में विश्वास कर सकते हैं उनके लिये मोक्ष का दरवाजा मानो खुल ही गया है। वे हर तरह से उन देव मानव की रूपा का अधिकारी बन कर उन्हीं पर भरोसा रखते हुए जल्दी गन्तव्य स्थल पर पहुँच जाते हैं परन्तु जो मनुष्य मोक्षकामी होने पर भी अवतारी पुरुष के देवत्व में विश्वास नहीं करता उनके लिये अवतारी पुरुष के साधक जीवन का

इतिहास बड़ा ही कल्याणप्रद है। वे जब देखते हैं कि साधक प्रगणी अवतारी पुरुष बड़े-२ संकट स्थल पर कुछ कुछ निराश होने पर भी लक्ष्य स्रष्ट नहीं हुए और पूर्णोदयम एवं पुरुषकार के सहारे तमाम विघ्नों को तर कर आगे बढ़े थे तब उनके चित्त में भी साहस और उदयम आ जाते हैं। और किसी एक अवतारी पुरुष की साधन प्रणाली से उपरुत होकर वे उन पर श्रद्धावान् हो जाते हैं और उन्हीं को अपने जीवन का आदर्श बनाकर धीरे धीरे गन्तव्य स्थल पर पहुँच जाते हैं। क्योंकि प्राकृतिक बुद्धि, भौतिक सर्वस्व, साधारण मनुष्य भी साधक जीवन से लाभ उठा सकते हैं। उनके विवेक वैराग्य, त्याग, तितीक्ष्णा, धैर्य, सहन शैलता, क्षमा इत्यादि गुणावली से आकृष्ट होकर वे भी मुग्ध हो जाते हैं और उनकी चित्त वृत्तियाँ धीरे-२ उन्हीं की ओर अभिमुखी हो जाती हैं। अतः अवतारी पुरुष के साधक जीवन से हम जितना उपरुत हो सकते हैं उनके बड़े ऐश्वर्यशाली देव भाव से भी उतना उपरुत नहीं हो सकते। कारण यह है कि साधक जीवन में किसी संकट स्थल पर पहुँच कर जब साधक का बाहर निकलने का रास्ता नहीं मिलते तब भगवान् श्री कृष्णादि की आध्यात्मिक चरम उपलब्धि और उनके उपदेश भी कुछ काम लायक नहीं होते। वे निराश होकर यह सोचते हैं कि श्रीकृष्णादि अवतारी पुरुष साक्षात् भगवान् थे। साधारण मनुष्य की तरह काम क्रोधादि रिपु उनमें था ही नहीं वे मनुष्य की तमाम दुर्बलता के परे थे अतः उनके लिये जो जो आध्यात्मिक उपलब्धियाँ सम्भव थीं वे हमारे लिये कदापि सम्भव नहीं हो सकतीं। परन्तु उनके साधक जीवन का



पूरा पूरा इतिहास यदि हमें मिलजाय तो उससे हमें यह प्रतीत होगा कि बड़े २ अवतारी पुरुषों में भी काम क्रोधादि रिपुया ! मनुष्योचित्त तमाम दुर्बलतायें भी उनमें थी और उदयम एवं पुरुषकार के सहारे वे उन सबों को लांघ कर आध्यात्मिक शीत के सर्वोच्च शिखर पर जा पहुँचे, तब हम में भी श्रद्धा भ्राजायेगी, हम संचगे कि आध्यात्मिक राश्य के इतने बड़े २ धुरंधरों में जष इतनी दुर्बलतायें देख पड़ती हैं और जष इनको भी प्रकृति के साथ लड़ाई करके ही जयी होना पड़ा तो हम जैसे दुर्बल मनुष्यों की बात ही क्या है, हम भी पंछे नूठ कर लड़ाई करते करते आगे ही बढ़ते रहेंगे और अन्त में इस जगच्चक्र को छिन्न भिन्न करके इसके परे जाकर परा शान्ति लाभ कर सकेंगे। अन्तः जगद्गुरु अवतारी पुरुषों के मनुष्य भाव को छिगा कर केवलमात्र उनके देवभावों का प्रचार करने में नफे की अपेक्षानुकसान ही जियादह होता है। यहाँ पर कोईशखरपाठक यह कह सकते हैं कि तुम्हारा कहना बिलकुल ठीक नहीं है। कारण यह है कि सूर्य भाचार्य शंकर ने गीता भाष्य की भूमिका में भगवान् श्रीकृष्ण को नारायण कह कर माना है और उनका जन्म लेना शरीर ध्याण करना आदि की वास्तवता को स्वीकार नहीं किया। अतः हम किस तरह से स्वीकार कर सकते हैं कि ये मनुष्योचित्त दुर्बलतायें लेकर मनुष्य बन कर ही हमारे बीच में आये थे। परन्तु मेरे कयाल में ऐसा विचार एकेशी है। कारण भगवान् शंकर अद्वैत मत के पचारक थे। अद्वैत मतानुसार यह जगत् की वास्तवता स्वीकार नहीं की जाती। एक अखंड ब्रह्म ही विद्यमान है और यह जीव जगत् उसी

ब्रह्म में कल्पित है। अतः आग्रह स्तम्भ पर्यन्त सभी व्यक्ति और वस्तु लीलाही लीला है वास्तवता कहीं नहीं है। अतः श्रीकृष्ण का मनुष्य होना जिस भाव से सत्य बोला जाता है उसी भाव से यह जगत् भी सत्य है अर्थात् इस जगत् को व्यवहार में सत्य माना जाता है परिमार्थ में सत्य नहीं माना जाता। अतः मेरे कहने का मतलब यह है कि व्यावहारिक भाव से श्रीकृष्णादि अवतारी पुरुषों के मनुष्य भाव को स्वीकार करने से उनके जीवन से हम जैसा अधिकतर लाभ उठा सकते हैं केवल मात्र उनके देवभाव को स्वीकार करने से हम उतने लाभान नहीं होसकते। अब यह भी विचारना चाहिये कि अवतारी पुरुषों के साधक जीवन का इतिहास पूरा पूरा क्यों नहीं रखा गया। इस पर हम अगले अंक में लिखेंगे।

अपूर्ण

## कवित्त

[ले० श्री दुर्गाप्रसाद जी गुप्त हिन्दी प्रभाकर]

गाथा कर हरि-गुण-गान भरे मूढ मन !  
 प्रीतम के प्रेम में स्वमन को छकाया कर ॥  
 काया कर शुद्ध मन बुद्धि से विचार नित,  
 द्वेष भी क्लेश काम क्रोध को भुलाया कर ।  
 छाया कर विषय-विकार से इयाय मन,  
 पतित की बांकी छांकी चित्त में सजाया कर ।  
 जाया कर सख्तुंग और हरि शरण में,  
 हरि चरणों में 'मन' मूरख लगाया कर ।



## वाराह अवतार

[ लेखिका भी बहिन त्रयदेवी जी ]

श्यामा-बहिन कोकिला ! सत्रमुन तू कोकिला ही है ! यदि तुझे विरा कोकिला कहा जाय, तो प्रौढोक्ति नहीं है क्योंकि तू विश्वम्भर भगवान् की चित्ताकर्षक और मनोहक कथायें हम सब बहिनों को सुनाती है। उन आलापदायिनी कथाओं को सुन कर संसार के भोगों से चित्त विरक्त होकर मुकुन्द भगवान् के चरणारविन्दों में लग कर अपूर्व आनन्द का स्वाद चखता है और फिर भूल कर भी संसार में नहीं जाता। हे देवी ! आज हमें भगवान् दीन वत्सल की किसी ऐसी विचित्र लीला का वर्णन कर, जिसको सुन कर हम सब बहिनों के चित्त फड़क जाय, आपक मुख सरोवर से निकलने वाले कथा रूप अमृतका पान करने के लिये हम सब बहिनें बहुत ही उत्सुक हैं।

श्यामा और अन्य सहेलियों की भगवत्-कथा में ऐसी उत्कण्ठा देख कर प्रसन्न होती हुयी, सब बहिनों का उत्साह बढ़ाती हुयी मधुर, गंभीर वाणी की गंगा सी बहाती हुयी कोकिला इस प्रकार कहने लगी:-

कोकिला-बहिन श्यामा ! तू धन्य है, तेरे माता पिता भी धन्य हैं, जो मुझे कठणा सागर जगदंकारक भगवान् की कथा सुनाने को प्रेरणा करती है। तेरे इस प्रश्न से तेरे हृदय को

नरपत्नी प्रकट होनी है। खाने, पीने, सोने में तो पशु पक्षी सभी समय व्यतीत करते हैं। नर अथवा नारी का अमूल्य देह प्राप्त करके जो बहिन भाई, खाने पीने, सोने और धन्य करने में ही सुरदुर्लभ नरदेह को व्यर्थ ही खोते हैं। इनका जीवन निष्फल है। जैसे कोई बहू मूल्य मणि का आदर्श न करके फेंक दे और कांच उठाले, इसी प्रकार जो बहिन भाई मनुष्य शरीर पाकर भगवत्कर्म रूप मणि का आदर्श न करके भोग रूप कांच में रत रहते हैं, इनके लिये विद्वान् शोक करते हैं। हे बहिन ! तेरा और इन बहिनों का मुख पर परम उपकार है, जो तुम मुझे मोक्षदायक भगवान् के चरित्रों का स्मरण कराती हो, इसलिये मैं तुम से बहुत ही प्रसन्न हूँ, मैं ही प्रसन्न होऊँ, इतना ही नहीं है किंतु अंतर्ध्यायी भगवान् भी तुम से प्रसन्न होंगे, क्योंकि भगवान् का गीता में वचन है कि जो मेरी कथा मेरे भक्तों को सुनाते हैं, वे मुझे अत्यन्त ही प्यारे हैं। जब तक श्रोताओं की कथा सुनने में प्रीति न हो, तब तक श्रोता को कथा कहने में उत्साह नहीं हो सका। क्योंकि यदि ग्राहक ही न हो, तो दुकानदार क्या करेगा ! खाली ही बैठा रहेगा अथवा बांटों को तोलता रहेगा, सौदा तब तक होगे, तभी बिकेगा इसलिये भगवत्कर्मा की ग्राहक आप सब बहिनें, मुझे और विश्वम्भर भगवान् को बहुत ही प्यारी हैं। भगवत्कर्मा में जिन का समय उपयोग में आता है, वे ही बहिन भाई धन्य हैं और उन्हीं का जन्म सफल है ! अच्छा ! श्रोता वक्ता दोनों का भगवान् कल्याण करें। मैं तुम्हें एक पुरातन इतिहास सुनाती हूँ, जिसको सुन कर भगवान् के चरणारविन्दों में दिन दूना रात सो गुणा प्रेम बढ़ेगा और मन में पड़



आह्लाद होगा ! कथा नयी नहीं है, पुगणी है, परन्तु कलियुग के प्रभाव से लोपसी होगयी है, इसलिये पुगनी हांती हुयी भी स्वाद नयी से भी अधिक देगी ।

जगदीश्वर विष्णु भगवान के नामि कमल से उत्पन्न होकर ब्रह्मा जी ने प्रथम अज्ञान, मोह, मडामोह, तामिस्र और अंधतामिस्रमय तामसी सृष्टि उत्पन्न की परन्तु इस सृष्टि से ब्रह्माजी संतुष्ट न हुए । तब उन्होंने सनक, सनन्दन, सनातन और सनतकुमार चार कुमारों को उत्पन्न किया और उन्हें प्रजा उत्पन्न करने की आज्ञा दी । ये चारों कुमार मोक्ष धर्म में प्रीति करने वाले, वासुदेव परायण और ऊर्ध्वरेता थे, इन्होंने प्रजा उत्पन्न करना स्वीकार नहीं किया तब ब्रह्माजी ने अपना स्रष्टृत्वं से रुद्र को उत्पन्न किया, मन्यु, मनु, महानस, महान, शक्र, कतुञ्ज, उग्रता, भय, काल धामदेव और घृतव्रत ये ग्यारह नाम रुद्र के रखे । धी, वृत्ति, उशाना, उमा, नियुत्सर्षि, इला, अम्बिका, इरावती, सुगा, दीक्षा और रुद्राणी, ये ग्यारह स्त्रियां उनको दीं और हृदय, इन्द्रिय, प्राण, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, सूर्य, चन्द्र और तप ये ग्यारह स्थान उनके रहने को बता कर उन्हें सृष्टि उत्पन्न करने की आज्ञा दी । रुद्र भगवान नील लोहित रंग वाले और तामसी स्वभाव वाले थे । इन्होंने अपने सभाज और अपनी आहृति के अनुसार प्रजा उत्पन्न की । भयकर प्रजा देख कर ब्रह्मा जी घबराये और 'हे पुत्र ! ऐसी प्रजा से तो मैं ने भर पाया' ऐसा कह कर रुद्र को प्रजा उत्पन्न करने से रोक दिया और उनको तप करने के लिये बल में सेज दिया क्योंकि तप का बड़ा भारी

माहात्म्य है । तपसे परम ज्योति, सबके अन्तर्गामी अशोक्षज भगवान सहज में ही प्राप्त हो जाते हैं

रुद्रभगवान के घन चले जाने के पीछे भगवान की शक्ति से युक्त ब्रह्मा जीने दश पुत्र उत्पन्न किये । मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, कतु, भृगु, वसिष्ठ, दक्ष और नारद, ये उन दश पुत्रों के नाम हैं । नारद ब्रह्मा जी की गोद से, दक्ष अगूटे से, वसिष्ठ प्राण से, भृगु त्वन्ना से, कतु हाथ से, पुलह नामि से, पुलस्त्य कर्णों से, अंगिरा मुख से, अत्रि अंशु से और मरीचि मन से उत्पन्न हुए । पश्चात् अपने दक्षिण भाग से ब्रह्मा जी ने धर्म को उत्पन्न किया । धर्म में स्वयं नारायण वास करते हैं । ब्रह्मा जी की पांड से अधर्म उत्पन्न हुआ । अधर्म भयंकर मृत्यु रूप है । ब्रह्माजी के हृदय से काम, स्रष्टृत्वं से क्रोध, नाँचे के भोष्ठ से लोभ, मुख से वाणी, गुह्य स्थान से समुद्र और पायु से निर्मृति उतरा हुआ । ब्रह्मा की छाया से कर्म ऋषि उत्पन्न हुये, जो देव हृति के पति हैं । ब्रह्मा के पूर्व मुख से ऋग्वेद, दक्षिण मुख से यजुर्वेद, पश्चिम मुख से सामवेद और उत्तर मुख से अथर्वण वेद उत्पन्न हुआ । पश्चात् आयुर्वेद, धनुर्वेद, गांधर्ववेद और स्थापत्य वेद ये चार उपवेद ब्रह्मा जी के पूर्वादि मुखों से क्रम से उत्पन्न हुए । आयुर्वेद को वैद्यक शास्त्र, धनुर्वेद को शास्त्र विद्या, गांधर्व वेद को गान विद्या और स्थापत्य वेद को कला विद्या कहते हैं । इतिहास और पुराण ब्रह्माजी के सब मुखों से उत्पन्न हुए हैं, इनको वेदवेत्ता पंचम वेद कहते हैं । पोरशी और उक्थ, चयन और अग्निष्टोम, आतोर्गाम और अतिरात्र, वाजपेय और गोसत्र, ये चार प्रकार दोर यज्ञ भी ब्रह्माजी के पूर्वादि मुखों से क्रम से उत्पन्न



हुए हैं। विद्या, दान, तप और सत्य ये चार धर्म अंग, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यस्त ये चार आश्रम, और सब प्रकार के छन्द ब्रह्माजी से उत्पन्न हुए हैं। इतना करने पर भी जब ब्रह्माजी ने देखा कि सृष्टि का व्यापार यथा योग्य नहीं चल सका, तब उन्होंने अपने दक्षिण और वाम अंग से एक मिथुन यानी जोड़ा उत्पन्न किया। उनमें जो पुरुष था, वह स्वार्थभुज मनु महाराजा हुए और शतरूपा उनकी पटरानी हुयी। मनुजी उत्पन्न होकर वेदगर्भ ब्रह्मा जी से इस प्रकार हाथ जोड़ कर नम्रता से कहने लगे:-

मनु- हे भगवान् ! आप एक ही इन सब प्राणियों के उत्पन्न करने और पालन करने वाले पिता हैं, इसलिये आप आप्तकाम हैं, फिर भी हमारा-आपकी सन्तानों का-आप पिता की आज्ञा पालन करना परम धर्म है, इसलिये कौन सा कार्य करने से हम आपकी शुभ्रुपा करने की समर्थ होंगे, यह आप कहिये ! जो कार्य हमारे करने योग्य हो और जिस कर्म के करने से इस लोक में सर्वत्र हमारी कीर्ति हो और परलोक में हम को उत्तम गति प्राप्त हो, उस कार्य के करने की हम को आज्ञा कीजिये। हे पूज्य ! आपको प्रणाम हो, हमारे योग्य सेवा बताये।

ब्रह्मा जी- हे तात मनु ! तूने निष्कपट होकर तुझ से जो आज्ञा मांगी है, और अपने को मुझे अर्पण कर दिया है इस से मैं तुझ से बहुत ही प्रसन्न हूँ, तुम दोनों का करण हो। हे वीर ! यदि पुत्र नम्रता पूर्वक, मत्सर रहित होकर अपने सामर्थ्य के अनुसार पिता की आज्ञा का आदर सति तपालन करें तो इतने ही से वे कृतार्थ हैं, क्योंकि जिन पुत्रों

ने पिता की आज्ञा शिर पर धारण काली, उन्होंने पिता का पूजन कर लिया, यह शिष्ट पुरुषों का मत है। हे पुत्र ! अब तू इस शतरूपा अपनी रानी में अपने गुणों के अनुसार सन्तान उत्पन्न कर, पृथिवी के धर्म की रक्षा कर और यह पुरुष भगवान् का यज्ञों द्वारा पूजन कर ! हे राजन् ! प्रजाओं का पालन करने से मेरी अत्युत्तम सेवा होगी और प्रजापालक ह्यं.केश भगवान् भी तुझ से प्रसन्न होंगे हे पुत्र ! जिस के ऊपर यज्ञ रूप जनार्दन भगवान् प्रसन्न न हों, इस का सब प्रकार का श्रम बृथा है क्योंकि उसने अपने आत्मा रूप भगवान् का निगदर किया है, और जिस से जनार्दन भगवान् प्रसन्न हो गये, उसने सब कुछ कर लिया, उसी का जन्म सफल है।

मनु- हे पिताजी ! जो कुछ आप की आज्ञा है, मैं उसका शिर आंखों से पालन करूँगा परन्तु मेरे और सब प्रजाओं के रहने के लिये स्थान बताइये ! सब प्राणियों का निवास स्थान यह पृथिवी तो अथाह जल में डूबी हुयी है, इसलिये इस पृथिवी देवी के उद्धार के निमित्त यत्न कीजिये।

हे बहिन ! मनु जी का यह कथन सुन कर और पृथिवी को जल में डूबी हुयी देख कर ब्रह्मा जी अपने मन में विचार करने लगे-

ब्रह्माजी- ( मन में ) मैं इस पृथिवी को ऊपर लाने का क्या उपाय करूँ ? मुझे तो कोई उपाय नहीं सूझता, जिन ईश्वर के हृदय में से मैं उत्पन्न हुआ हूँ, वे ही पवित्र कीर्ति करुणा सिंधु अशोकभूज भगवान् इस पृथिवी को ऊपर लाने का उपाय करें !

हे बहिन ! ब्रह्माजी इस प्रकार सोच दिखार कर ही रहे थे, इतने ही में अचानक उनकी नासिका



के छिद्र में से अंगूठे के पोरों के बराबर एक शूकराकार बालक निकला और ब्रह्मा जी के देखते ही क्षण मात्र में हार्थी के समान आकार वाला हो गया! यह देख कर मरीचि आदि ब्राह्मण, सनकादि ऋषि, स्वार्थभुन मनु और शतरूपा सहित ब्रह्माजी को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे इस प्रकार की अनेक तर्क-नायें करने लगे!

ब्रह्माजी- शूकर के बहाने से हमारे सामने विद्यमान यह कौन पाण्ड है? क्या यह मेरी नासिका में से निकला है। निकलते ही इतना बड़ा हो गया है, यह बड़ा आश्चर्य है! पहिले तो यह अंगूठे के पोरों के समान दीखता था! क्षणभर में ही गंड-शिला के समान हो गया है! कहीं यह यज्ञ रूप भगवान् ही तो नहीं है? जो अपना वास्तविक रूप छिपा कर मेरे मन को मोह में डाल रहे हैं!

ब्रह्माजी इस प्रकार अपने पुत्रों से तर्कनाकर ही रहे थे कि इतने ही में उन यज्ञ पुरुष भगवान् ने उस अपने शरीर को बड़े भारी पर्वत के समान कर के गर्जना की। उस गर्जना से दशों दिशायें गूँजने लगीं। सर्व व्यापक श्री हरि की उस गर्जना को सुन कर ब्रह्मा जी और समस्त श्रेष्ठ ब्राह्मण अत्यंत हर्षित हुए। पश्चात् उन जन लोक, तपलोक और सत्यलोक निवासी ऋषियों ने ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद के पवित्र मंत्रों से उन वराह रूपधारी यज्ञ भगवान् की मुक्त कंठ होकर स्तुति की। यज्ञ रूप वराह भगवान् ने भक्तों की की हुयी अपने गुण कीर्तन से पूगं वेद रूप स्तुति सुन कर भक्तों के कल्याण के लिये फिर गर्जना की और गजराज के समान लीला करते हुए जल में प्रवेश करने लगे। वराह भगवान् ने अपनी पूँछ ऊपर को खड़ी करली

थी, उनके प्रांथा पर के लम्बे २ वंश कम्पायमान हो रहे थे आकाशचारी, घोर आकार वाले भगवान् की टाँचा पर के रोम तोसे थे, अपने खुर्चों से मेघों को तित्तर चित्तर कर दिया था इनकी दाढ़ें श्वेत थीं, इनकी दृष्टि का प्रकाश दशों दिशाओं में फैला हुआ था, यद्यपि भगवान् की दाढ़ें भयंकर थीं फिर भी स्तुति करने वाले ऋषियों को सोम्य दिखायी दे रही थीं, इस प्रकार पृथिवी का उद्धार करने वाले भगवान् पृथिवी का पता लगाने के निमित्त अपनी नासिका से सूँघते २ जल में प्रवेश कर गये। उस समय भगवान् का शरीर वज्रमय पर्वत के समान था, उस शरीर के गिरने के वेग से समुद्र का जल खलबलाने लगा और मेघ के समान गर्जने वाला समुद्र भात होकर अपनी फैली हुई लम्बी २ तरंगों रूप भुजाओं से भगवान् की शरण गया और 'हे यज्ञपालक! मेरी रक्षा कीजिये!' ऐसा कह कर विलाप करने लगा!

पश्चात् यज्ञ मूर्ति वराहने वाण के समान आंकड़ेदार अपने खुर्चों से अपार जल को फाड़ कर गताल में जाकर सब प्राणियों की आधार रूप पृथिवी को देखा! इस पृथिवी को प्रलय काल के जल में शयन करने को उद्यत हुए भगवान् ने अपने उदर में रख लिया था, पृथिवी को अपनी दाढ़ी से उखाड़ कर जब भगवान् रसातल से बाहर आ रहे थे, तब हिरण्याक्ष दैत्य गदा हाथ में लिये हुए उनको रोकने लगा। जैसे सिंह हस्ती का प्राणान्त करता है, इसी प्रकार भगवान् ने उस दैत्य को सहज ही मार डाला। जैसे कोई गजराज मिट्टी के टीले में टक्कर मार कर आने और इसके गंडस्थल में मिट्टी लगने से तन्द्रवर्ण हो जाय, इसी प्रकार



भगवान् के कपोल और मुख हिरण्याक्ष की रुधिर की कोच से लाल २ हो गये थे। हाथी के समान लीला से अपने श्वेत दाँतों की नोक पर पृथिवी को धारण किये हुए तमाल ( आबनूस ) के समान श्याम वर्ण वाले वराह रूप ईश्वर को देखकर ब्रह्मादि ऋषि हाथ जोड़ कर वेद के सूक्तों से इनकी इस प्रकार स्तुति करने लगे-

ऋषि- आप अजित भगवान् का सर्वदा जय जय कार हो ! हे यज्ञपते ! आप की वेदत्रयी रूप सृष्टि को नमस्कार है ! आप के शरीर के छिद्रों में सकल यज्ञ लय से हो रहे हैं ! पृथिवी के उद्धार निमित्त वराह रूप धारण करने वाले आपको प्रणाम है ! हे देव ! आप का यह यज्ञात्मक शरीर पापी पुरुषों के देखने में नहीं आ सकता ! आपकी त्वचा में गायत्री आदि छन्द हैं, केशों में दर्भ हैं, दृष्टि में घृत है, चारों चरणों में अश्व्यु आदि चार ऋतियों के चार कर्म हैं, आपके मुख में जुहू पात्र है, नासिका के छिद्रों में खुवा नामक यज्ञ पात्र है, उदर में इडा पात्र है, कानों में चमस है, मुख में प्राशित्र है, कंठ में ग्रह हैं और आपका चवण अग्नि होत्र है ! ( हंस के मुख के आकार वाले पात्र का नाम जुहू है, हाथ भर लम्बे चोकाण पात्र का नाम इडा है, आठ अंगुल के सोमपात्र का नाम चमस है, गौ के कान के समान पात्र का नाम प्राशित्र है और बारह सोम पात्रों का नाम ग्रह है ) हे यज्ञ वराह ! दीक्षा दृष्टि आपका अवतार है, इपसद् नाम की तीन दृष्टियाँ आपकी प्रीति हैं, प्रायणीय और इदयनीय दो दृष्टियाँ आपकी दाढ़ हैं, प्रथम्य ( महावीर ) आप की जिह्वा है, सम्य यानी होम रहित अग्नि और अवसव्य यानी होम करने का अग्नि आप

यज्ञ रूप का मस्तक है, चिति ( इष्टि का चयन ) आपका प्राण है। हे देव ! सोमरस आप का वीर्य है, प्रातः सचनादि तीन सवन आपकी बालकपनादि तीन अवस्था हैं, अग्निष्टोम आदि सात संस्था आपकी सात धातु हैं, द्वादशादि सत्र आपके शरीर के जोड़ हैं यानी आप सकल यज्ञ रूप हैं और संपूर्ण इष्टियाँ आपके संधिस्थानों के बंधन हैं। मंत्र, देवता, घृतादि द्रव्य सकल यज्ञ और कर्म रूप आपको चारंवार नमस्कार है, वैराग्य, भक्ति, और चित्त की स्थिरता से प्राप्त होने वाले, ज्ञान स्वरूप और ज्ञान देने वाले गुरु आपको चारंवार नमस्कार है ! हे भूमि उद्धारक भगवन् ! जैसे जल में से निकलने वाले मदोन्मत्त हाथी के दाँतों पर धारण की हुयी पत्रों सहित कमलिनी शोभा पाती है, इसी प्रकार आपकी दाढ़ों पर धारण की हुयी पर्वतों सहित पृथिवी शोभा पारही है अथवा अपने ऊपर मेघों को धारण करने वाले बड़े २ शिखरों से जैसे किसी कुल पर्वत की शोभा होती है, इसी प्रकार दाँतों पर धारण किये हुए भूमंडल से आपके वेदत्रयी रूप इस वराह शरीर की शोभा हो रही है ! हे देव ! स्थावर जंगम प्राणियों की व्यवस्था करने के लिये आप अपनी पत्नी रूप जगन्माता इस पृथिवी को उत्तम प्रकार से स्थापन कीजिये, आप संपूर्ण जगत् के पिता हैं, जैसे यज्ञ करने वाले पुरुष अरणी में मंत्र से अग्नि स्थापन करते हैं, इसी प्रकार आपने अपना तेज पृथिवी में स्थापन किया है, इसलिये हम सब पृथिवी वासी आप पिता सहित भूमि माता को नमस्कार करते हैं। हे प्रभो ! पाताल में गयी हुयी पृथिवी का आप ने उद्धार किया है, यह कार्य दूसरा कोई नहीं कर



सका था, परन्तु यह कार्य आपके लिये आश्चर्य रूप नहीं है क्योंकि आपने तो अपनी माया से अत्यंत आश्चर्य रूप इस जगत् को रचा है। हे ईश्वर! आपने अपने केशों से उड़ी हुयी जल की बिन्दुओं से हम सब को पवित्र किया है! हे देव! आपके अनन्त कर्मों का जो अन्त पाने की इच्छा करते हैं, उनकी बुद्धि नष्ट हुयी समझनी चाहिये। हे देव! आपकी योग माया से सब जीव मोहित हो रहे हैं, वे जीव आप अचिंत्य अनन्त शक्ति वाले को जान कर आपकी भक्ति करें, ऐसा अनुग्रह कीजिये!

ऋषियों की यह स्तुति सुन कर पृथिवी को पूर्व के समान जल पर स्थापन करके भगवान् निज धाम को चले गये। जो इस कथा को सुनाता है, और जो दूसरों को सुनाता है इनके हृदय में स्थित जनार्दन भगवान् शंभ्र ही प्रसन्न होते हैं!

कोकिला ने कथा समाप्त की, सब बहिनें साधु २ कहने लगीं। जो निरंतर भगवत्पूजा में दत्तचित्त रहते हैं, वे ही धन्य हैं, सन्न कहा है।

कुं-भगवत्पूजा सार है, अन्य समी निस्तार।

करते भगवत् गुण कथन, होते भव से पार ॥

होते भव से पार, गर्भ में लौट न आते।

जीते करते चैन, अन्त भक्षय पद पाते ॥

अपदेवी! भज ईश, नहीं कौड़ी का लर्चा।

नहिं कुछ काया कष्ट, सुलभ अति भगवत्पूजा ॥

## भक्ति

( ले० पं० काशीराम जी शास्त्री )

यदि गमनमभस्तात्कालपासानुबद्धो,  
यदि च कुलविहीने जायते पक्षिकीटे।  
कृमिशतमपि गत्वा जायते चान्तरागमा,  
मम भवतु हृदिस्थं केशवे भक्ति रेका ॥

तुलसी कौशल रावभद्र, मत चितवे बहु ओर।

सीता राम मयङ्गुल त् कर नयन चकोर ॥

आज हम इसका विवेचन करेंगे कि मनुष्य जीवन धारण करने का फल क्या है? इस विषय में साधारण जनता के अनेक विवेचन हैं। किसी-किसी का कथन तो यह है कि संसार में खाना पीना मजा उड़ाना और सुखी रहना यह मनुष्य जन्म का सार है। निःसन्देह जिन्होंने सृष्टि भेद जीव ईश्वर के स्वरूप को नहीं जना वे इसी को मुख्य मानते हैं। यह सिद्धान्त अज्ञ णश्चात्य लोगों का है। प्राचीन भारत वर्ष का नहीं है, भारत वर्ष ने सृष्टि रचना तत्प्रोत्पत्ति, जीव ईश्वर का भेद और दोनों के स्वरूप को जानकर यह बतलाया है, कि जन्म जन्मान्तर से कर्म बन्धनों में जकड़े हुये जीवको कर्म बन्धनों से लुड़ाकर अत्यन्त सुख मोक्ष में लेजाना, यह मनुष्य जन्म धारण करने का फल है। इसको शास्त्र ने मोक्ष, अपवर्ग, आत्यन्तिक सुख आदि अनेक नामों से याद किया है और इसकी



प्राप्ति का साधन प्रेम बतलाया है। स्वाती नक्षत्र में वर्षा हुआ पानी केले के गर्भ में गिरेगा तो कपूर बन जायगा, यदि स्वाती का पानी सर्प के मुख में चला जावे तो हलाहल जहर बनेगा, यह हीपानी सर्प में गिरे तो मोती बन जाय। जैसे स्थान भेद से स्वाती का पानी अनेक रूप धारण करता है इसी प्रकार मनुष्य का मन जिस स्थान में चला जायगा वैसे ही रूप को उत्पन्न करदेगा। मनुष्य का मन जहाँ स्थित होता है उसी को प्रेम कहते हैं। वह प्रेम, पात्रभेद से अपने अनेक रूप बना लेता है। मन की स्थिति का नाम प्रेम है। यदि मनुष्य का प्रेम किसी बच्चे पर चला जावे तो संसार कहेगा कि इस बच्चे पर इस मनुष्य की बड़ी दया है, यही मन यदि बराबर चले में चला जाय तो फिर इसका नाम मित्रता होगा, यही मन जब अपने पूज्य गुरु, आचार्य, माता, पिता, प्रभृति मान्य पुरुषों में जाता है तब इसका नाम श्रद्धा होता है, जब कारुणिक प्रभु जगदीश्वर की शरण में चला जाता है तब इसका नाम भक्ति होता है। यह हजरत मन गिरगिट की भाँति अनेक रंग बदलता है इसी विषय में एक महात्मा लिखते हैं कि:-

जो मन नारी की ओर निहास,  
तो मन होत है नरि को रूपा ।  
जो मन काहु से कोष करे,  
तब कोष मयी है जाय तरूपा ॥  
जो मन माया ही माया रटे नित,  
तो मन बहुत माया के रूपा ।  
सुन्दर जो मन मग्न विचारत,  
तो मन होत है मग्न स्वरूपा ॥

जैसे अफीमची के पास बैठ कर अफीमची, भंगड़ के पास बैठ कर भंगड़, जुवारी के पास बैठ कर जुएबाज, व्यभिचारी के पास बैठ कर व्यभिचारी, शराबी के पास बैठ कर शराबी, बन जाता है इसी प्रकार ब्रह्म में प्रेम और ध्यान लगाने से यह जीव अपने स्वरूप को छोड़ कर साक्षात् ब्रह्म बन जाता है। इसमें किसी प्रकार भी बीचपट प्रभृति शर्तों को स्थान नहीं मिलता।

भक्ति किसको कहते हैं इस विषय में भक्ति का लक्षण करते हुये प्रभु रामचन्द्र जी उपदेश देते हैं कि:-

जननी जनक बंध सुत दारा, तनु धन भवन सुदह परिधारा ।  
सबको ममताताग बटोरी, मम पद उरहि बांध मन डोरी ॥  
माता, पिता, भाई, पुत्र, कलत्र, स्वशरीर, धन, मकान, मित्र, कुटुम्ब, इन स्थानों में प्रत्येक मनुष्य के प्रेम के सूक्ष्मतन्तु लगे हुये हैं। इन सूक्ष्म धागों को बटोरो और सब को मिला कर एक मोटी रस्सी बनालो। उस रस्सी को लेकर हमारे चरणों को बांध डोरी का दूसरा छोर अपने अन्तःकरण में रखो इसी का नाम भक्ति है। सिद्ध होगया कि ईश्वर के चरणों में प्रेम लगाने को ही भक्ति कहते हैं।

संसार सागर से पार होने के लिये सभी को भक्ति की आवश्यकता है। भक्ति के बिना वैदिक कर्मकाण्ड भी बन्धन का हेतु हो जाता है। भक्ति को छोड़ कर जो विज्ञानी बनते हैं वे अपने आत्म-विज्ञान से उन्नति अवश्य कर जाते हैं, किन्तु उन्नति करके भी फिर अंधे मुँह इसी संसार में गिर जाते हैं। इसके विषय में शास्त्रों में अनेक लेख मिलते हैं।



श्लोकः सुति भक्तिमुपस्यते विभो ।  
 किलरयन्ति ये केवल बोधलब्धये ॥  
 तेषामसौ केशल एव सिष्यते ।  
 नान्यथा स्थूत्र तुषाववातिनाम् ॥

व्यापक कल्याण करने वाली जो आपकी भक्ति है उस भक्ति को तिलोजलि देकर जो लोग योग और ब्रह्म विद्या में परिश्रम रूपी क्लेश उठाते हैं वह क्लेश ही उनके हाथ पड़ता है। भला कभी धान के मोटे छिलके कूटने वालों को भी चावल मिलते हैं। इसी प्रकार अनेक पुराण और वेद मुक्त कंठ से यह उपदेश दे रहे हैं कि भक्ति के बिना कामकाण्ड और ज्ञानकाण्ड मोक्ष नहीं दे सकते। संसार में जितने भी आस्तिक मजहब तथा जितने भी मनुष्य हैं वे समझे हुये हैं कि ईश्वर में प्रेम के बिना हमारा दुःखदूर ही न होगा और इसी कर्तव्य को पूरा करने के लिये हमको मनुष्य शरीर मिला है। इतना जान कर भी प्रवृत्ति में फंसे हुये हजरत मनीराम को ईश्वर के चरणारविन्द में नहीं लेजा सकते। यह हजरत पेसा अडियल स्ट्ट है कि इसको पूर्व दिशा में ले जाना चाहें तो यह चार कदम पश्चिम दिशा में ही हट जायेगा। इसको वेद पढाओ उपनिषदें सुनाओ, १८ पुराणों की कथा सुना दो, इसके कानों में महाभारत की कथा ठूस दो किन्तु यह जब चलेगा तब संसार की चमक दमक पर ही चलेगा। तुमको तो ईश्वर प्रेम का भूत सवार है और इस हजरत को-

ये मेरे देश बलापत है गज, ये मेरे मन्दिर ये मेरी धाती ।  
 ये मेरे मात पिता पुनि बांधव, ये मेरे पूत सो ये मेरे नाती ॥  
 ये मेरी कामिनी बेलि करे नित, ये मेरे सेवक है दिनराती ।  
 सुन्दर वैसे दि छोटि गयो सब, तेल जरयो सो बझी जब राती ॥

मनीराम का तो यह हाल है और जगदीश्वर भी धन, यौवन, विद्या, चातुरी, प्रतिष्ठा, अनुभव प्रभृति किसी भी गुण से प्रसन्न नहीं होते। वे जब प्रसन्न होते हैं तब भक्ति से। इस विषय में एक कवि लिखता है कि-

व्याधस्याधरणं भ्रुवस्य च वयो विद्या गजेन्द्रस्य का,  
 कुञ्जायाः किमु नामरूपमधिकं कि तसुदान्नो धनम् ।  
 वंशाः को विदुरस्य याद्वपतेरुप्रस्य कि पीरुर्ग,  
 भक्त्या तुष्यति केवलं न तु गुणैर्भक्तिप्रियो माधवः ॥

भला सोचिये तो सही व्याध में क्या आचरण था? नित्य प्रति जीवों को मारता था किन्तु ईश्वर का अनन्य भक्त था। इस भक्ति के प्रताप से भगवान् इतने प्रसन्न हुये कि व्याध के विज्ञान रूपी नेत्र खुल गये। उसने व्याध गीता लिखी जिसके समझने में आज परिहृत लोग भी बगलें झांका करते हैं। फिर हम कैसे मानलें कि भगवान् शिष्टाचार से प्रसन्न होते हैं। जगदीश्वर आयु से भी प्रसन्न नहीं होते, यदि आयु से प्रसन्न होते तब तो सभी बूढ़े ईश्वर के कृपापात्र बन जाते। आप प्रसन्न हुये तो छोटे से बच्चे ध्रुव पर होगये। क्षत्रियों की वीरता के गीत गाने वाले सुधारकों को किसी दिन ईश्वर के परम भक्त ध्रुव की कथा पढ़नी चाहिये! इस कथा से यह ज्ञान हो जाता है कि संसार में वही बली है वही शानी है, यशस्वी वही है, पूज्य वही है जिसके मन की धारा अवच्छिन्न रूप से भगवच्चरणारविन्द में लग गई है। जगदीश्वर किसी की विद्यासे भी प्रसन्न नहीं होते क्या कोई विद्वान् ईश्वर के ज्ञान को पहुंच सकता है? नहीं पहुंचता तो फिर संसार की अधूरी विद्या पूर्ण विद्वान् प्रभु को कैसे प्रसन्न करेगी। क्या



हार्थी ने वेद पढ़ा था या यह हाफिज होगया था ? यह कुछ नहीं, पूर्व जन्म के अभ्यास से इसका मन ईश्वर में चला गया इसी सम्बन्ध से कष्ट से छूट कर संसार बन्धन तोड़ मोक्ष को चला गया। आपने कभी कुब्जा का नाम सुना है वह तीन जगह से टेढ़ी थी। उस पर भगवान् प्रसन्न हो गये। क्या वह खूबसूरत थी, या उसका नाम बढ़िया था ? उसका केवल ईश्वर में प्रेम था। भगवान् धन से भी प्रसन्न नहीं होते, यदि धन से प्रसन्न होते तो धन कुबेरों पर प्रसन्न होते इस विचार से सुदामा पर क्यों प्रसन्न हुये जिसके घर में आटा न तवा, थाली न बटलोई। इसके घर में यदि भूल से चूहे आ जायें तो उनको रात दिन के रोजे आरंभ करने पड़े। ऐसे निर्धन पर क्यों प्रसन्न हुये ? प्रेम के कारण। विभु उत्तम वंश में पैदा होने से भी प्रसन्न नहीं होते, यदि ऐसा होता तब तो विदुर से कभी प्रसन्न ही नहीं होते। जगदीश्वर पाण्डु से प्रसन्न हुये न धृतराष्ट्र से प्रसन्न हुये, तो विदुर से क्यों प्रसन्न हुए ? इसका कारण यही कि उनका भगवान् में अटूट प्रेम था। भगवान् किसी के पौरुष से भी प्रसन्न नहीं होते पौरुषों कंस को पछार डाला और पौरुष हीन उग्रसेन को राज्य दे दिया। इन उदाहरणों के देखने से यह सिद्ध होता है कि भगवान् को प्रेम प्यारा है। इसी विषय में और भी अनेक कविताएँ अनुभव सिद्ध ईश्वर प्रेमियों की मिलती हैं। उन अनेक कविताओं में से दो कविताएँ हम श्रोताओं को सुनाते हैं पहिली कविता यह है कि—

तीन टुक कौपीन के, भी भागी विन लौन ।

तुलसी रघुवर उर बसै, तो इन्द्र वापुसो कौन ॥

लंगोटी फटी हो, खाने के लिये विना नमक

का शाक मिलता हो, किन्तु मन में निरंतर भगवान् वसते हों उसके आगे लखपती राजा, जमींदार, विद्वान् साइंटिस्ट कुछ भी हैमियत नहीं रखते। यह लंगोटीबाज भवबन्धनों को तोड़ कर ब्रह्म बनेगा और ये सेठ साहूकार, राजा, राईस, विद्यासागर, साइंटिस्ट, यमराज के नरक कुंड रूपी वेदिंग कमों में पहुंच कर हाहाकार मचावेंगे। ये भले आर्मी आप तो दुःखसागर में डूबेंगे ही किन्तु हाहाकार मचा कर पढ़ेसियों को भी न सोने देंगे सच बात तो यह है कि संसार में जितने अच्छे काम किये हैं वे सब लंगोटीबाजों ने किये हैं। लंगोटीबाज शंकर ने बौद्ध मजहब को गिरा दिया, लंगोटीबाज रामानुज ने भक्ति की भागीरथी बहा दी, लंगोटीबाज रामानन्द ने हिन्दुओं के प्रत्येक घर में और हिन्दुओं के अन्तःकरण में राम नाम की छाप लगा दी, हमको तो यहाँ कड़ना पड़ेगा कि 'कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः' संसार में यदि कोई भाग्यवान् है तो वह कौपीनवाला ही है। दूसरी कविता यह है—

सूत इार अनेक मतंग जंजीर जड़े मद अम्यु चुवाते ।  
तीखे तुरंग मनोगत चंचल, पीन के गौनहु ते बड वाते ॥  
भीतर चन्द्रमुखी अवलोकत, वाहर भूप जुरे न समाते ।  
ऐसे भयो तो कहा तुलसी, जो पै जानकी नाथ के रंग न राते ॥

इस कविता का भी अभिप्राय यही है कि जिसने भगवान् में प्रीति नहीं लगाई उसकी उन्नति पर धूर है। संस्कृत के कविने जो "व्याधस्वा चरणं" इस श्लोक में भक्तों के नाम लिखे हैं उससे यही न समझ लेना कि इतने ही भक्त संसार बन्धन तोड़ कर मोक्ष को गये हैं एक हिन्दी कवि लिखता है कि—



देव हृग तारे तोहि गार्हे वेद चारे ।  
 तारे पतित अनेक जेते नभ में न तारे हैं ॥  
 रत्न तारे नैनन सं नेकहु निहारे नाथ ।  
 कोटि २ दीनन दारिद्र बिधारे हैं ॥  
 भीषति पुकारे कई नीरद वरन वारे ।  
 राधाजू के प्राण प्यारे बशुवा के वारे हैं ॥  
 नन्दके दुकारे भसाधर के धरन हारे ।  
 मोर पंख वारे सो हमारे रखवारे हैं ॥

आज हजार बार समझाने पर भी लोगों के चित्त में ईश्वर प्रेम नहीं आता वरन् ईश्वर प्रेम का उपदेश करने वालों को क्रुप मंडूक और वेवकूफ समझा जाता है। ये लोग अपने मन में समझते हैं कि हम वीर हैं हिन्दू लीडर हैं हम जाति का सुधार करके छोड़ेंगे। जो लोग कर्तव्य हीन वेवकूफ हैं वे ईश्वर ही ईश्वर चिन्ताया करते हैं। ठीक अग्निमान के नशे में मनुष्य क्या नहीं कर सकता जितने अनर्थ कर डाले वे सब थोड़े हैं। वेवकूफ लीडर हैं या ईश्वर भक्त हैं इस विषय में हम एक दृष्टान्त आप लोगों के आगे रखते हैं।

एक राजा ने एक दिन अपने मंत्री से कहा कि हमको एक ऐसे मनुष्य की आवश्यकता है जो संसार में फर्स्ट क्लास का वेवकूफ हो तुम जाओ। और घूम कर ऐसे मनुष्य को तलाश कर लाओ। आज्ञा पाकर दीवान चल दिया। कई एक देशान्तरों में भ्रमण किया किन्तु कोई वेवकूफ नहीं मिला। अन्त में निराश हो कर घर को लौट रहा था रास्ते में क्या देखा कि एक मनुष्य नीमकी डाल काट रहा है और जिस तरफ से वह काट कर जमीन पर गिरेगी उसी तरफ बैठा है इसको देख कर दीवान ने समझा कि काम तो हो

गया, वेवकूफ मिल गया किसी प्रकार इसको राजा के पास ले चलना चाहिये। अपने मन में यह इरादा करके दीवान ने उस मनुष्य से वार्तालाप आरंभ करदी। सब से प्रथम यही पूछा कि जिधर की डाल काट कर जमीन पर गिरेगी तुम उधर ही बैठे इसको काटते हो जब यह गिरेगी इसके साथ में तुम भी गिर जाओगे क्या तुमको यह ज्ञान नहीं है? इस प्रश्न को सुनकर वह मनुष्य बोला क्या संसार में तुम ही बुद्धि के पहाड़ पैदा हुये हो और हम गिरे मूर्ख हैं जब यह डाल काटती २ कमजोर हो जावेगी तब हम दूसरी तरफ न बैठ जावेगे! इसको सुन कर दीवान समझ गया कि यह भी सोलह आने मूर्ख नहीं है। घोड़ा आगे बढ़ा दिया। आगे क्या देखा कि चार आदमी यात्रा की तैयारी कर रहे हैं उनका इरादा है कि रात के आठ बजे से चलो दीवान ने घोड़ा बांध दिया और इरादा किया कि यहाँ पर घोड़े को दाना खिला लें तथा हम भी भोजन लालें रात को इनके साथ चल दें ऐसा हो कि रात को आठ बजे से चार मनुष्य चले दीवान ने भी पीछे घोड़ा लगा लिया। चलते २ जब बारह बज गये उन चार में एक अंधा आदमी था वह बोला कि ठहरो आगे मत चलो हमको मालूम देता है कि सामने से बदमाश आ रहे हैं। यह चारों लड़े होगये उनमें से एक दूसरा आदमी बोला जो बहिरा था कि हां कुछ बात ठीक मालूम होती है खड़बड़ २ का शब्द आ रहा है, आगे बदमाश जरूर हैं। इसको सुन कर इन चार में जो लंगड़ा था वह बोला तो फिर भाग चलो। एक आदमी उनके साथ नंगा था उसके पास इन्ध भर भी कपड़ा नहीं था। वह बोला तुम भागोगे न भागोगे अंधेरी रात में कपड़े उतरवा



लोगे। दीवान ने समझा कि यह है आछा दर्जे का बेवकूफ जो बिलकुल नंगा खड़ा है और कपड़े उतर जाने का स्वप्न देख रहा है। दीवान ने उससे बात चीत की, पहिने को कपड़े दिये और अपने साथ लिवालाये। राजा के यहां खबर कर दी कि मैं बेवकूफ को लिवालाया। दरवार लगा, दरवार में बेवकूफ पेश हुआ, राजा ने परीक्षा करनी चाही परीक्षा करते समय राजा ने बेवकूफ की तरफ उंगुली उठाई। बेवकूफ ने राजा की तरफ को घूसा उठाया। राजा ने अपनी नाक बन्द की, गंवार ने समझा कि यह नाक काटने को कहता है, गंवार ने अपनी जीभ पकड़ली कि जो तू नाक काटेगा तो मैं जीभ पकड़ के खींच चलूंगा। राजा समझ गया कि यह पूरा गंवार है। उससे कहा कि हमने तुम्हारी परीक्षा करली हम जैसा आदमी चाहते थे तू वैसा ही है। आज से हम तुम्हको नौकर रखते हैं रुपया रोज देंगे और यह लकड़ी देते हैं इसमें तीन लाख के जवाहिरात जड़े हैं तुम इसको लेकर घूमो। घूमते-र तुमको जो बेवकूफ मिल जावे यह लड़की उसको देदो और हम से आकर इत्तला करो हम तुमको दस लाख रुपया इनाम देंगे इसको सुन कर बेवकूफ सलाम करके घर को बल दिया। प्रत्येक महीने में आवे अपनी तनक़्वाह लेजावे और नित्य प्रति बेवकूफ की खोज में लगा रहे। घूमते-र बीस वर्ष बीत गये किन्तु कोई बेवकूफ न मिला। दैवयोग से राजा मरने लगे, राज का काम युवराज के सुपुर्द कर दिया दीवान को सब समझा दिया। दीवान ने पूछा कि कहिये कुछ और मन की अभिलाषा बाकी तो नहीं है। राजा ने कहा कि हाँ अभी एक अभिलाषा बाकी है उस लकड़ी वाले गंवार को बुलाओ। दीवान ने

सवार भेज कर गंवार को बुलाया और राजा के सामने पेश कर दिया गंवार ने झुक कर राजा को प्रणाम किया और पूछा कि कैसी तबियत है। राजा ने कहा कि तबियत का हाल क्या पूछते हो अब तो हम चलते हैं। गंवार बोला कितनी दूर जावोगे? राजाने कहा कि इसका क्या पता। गंवार ने कहा कि तो अच्छा यह बतलाइये आप लौट कर कब आवोगे? राजा ने कहा जहां हम जाते हैं वहां गया हुआ कोई मनुष्य आज तक लौट कर नहीं आया। गंवार बोला अच्छा तो फिर यह बतलाओ कि आपके साथ राजकुमार, रानी, दीवान और पलटने यह सब जायेंगे? राजाने कहा नहीं यह कोई साथ न जायेंगे। गंवार ने पूछा तो फिर सवारी क्या र तैयार की? राजा ने कहा कि यह तो मंगज चाट जायगा इसको कुछ कह भी नहीं सकते गंवार सो गंवार, हार कर जवाब दिया कि सवारी भी साथ नहीं जायगी। यह सुन कर हजरत गंवार बोले तो फिर यह बतलाइये रास्ते के लिये कलेऊ क्या र बना। राजाने कहा कलेऊ भी साथ नहीं जाता इतना सुन कर गंवार बोला कि यह लकड़ी लीजिये और दस लाख रुपया इनाम दीजिये। राजा बोले यह क्या? गंवार बोला कि हम जब दस कोस बाहर जाते हैं तो आधसेर की तो पूरी ले जाते हैं, और १५ रुपये की एक घोड़ी ले रखी है उस पर चढ़ कर जाते हैं तथा साथ में एक नौकर ले जाते हैं नहीं मालूम तुम कितनी दूर जाते हो साथ में न कोई घर का आदमी, न नौकर, न सवारी न कलेऊ, न कपड़ा न रुपया, न पैसा, तुम अकेले ही नागा बाबा बनकर खाली हाथ जाते हो तुम से ज्यादा बेवकूफ दुनिया में कौन होगा? लीजिये अपनी लकड़ी और



लाइये दस लाख रुपया। राजा पैरों में गिर पड़ा और हाथ जोड़ कर बोला कि तू गंवार नहीं है बड़ा बुद्धिमान है, तू मेरा गुरु है किन्तु मैं अब क्या करूँ मेरा तो समय आगया इतना कह कर राजा साहब के पश्चात्ताप करते ही करते प्राण पखेरू उड़ गये जिसको गंवार समझा था यह बुद्धिमान निकला और जो अपने को बुद्धि का ठेकेदार समझे था वह गंवार निकला। आज सुधारक भक्तों को भले ही गंवार कहें किन्तु जिस दिन यह संसार टूटेगा उस दिन निर्णय होगा कि कौन गंवार है और कौन बुद्धिमान। भक्तों पर आने वाली आपात्तयों को ईश्वर प्रेम एक दम फूंक डालेगा, किन्तु लीडरों पर आने वाली आपत्तियों को सोडावाटर, बिसकुट, डबलरोटी, आदि इनको कुछ भी सहायता नहीं कर सकेगा। अन्त में इनका मुँह काला होगा और नहीं मालूम कितनी दफा इनको काल कोठरी को सजा भोग कर पैदा होकर मरना पड़ेगा। विचार शील मनुष्य अब बतलावे कि भक्ति का उपदेश करने वाले बेवकूफ हैं या ये लोग। कई एक मन चले लीडर अभिमान के जोश भर कर यह भी कह देते हैं कि ईश्वर क्या है फर्स्ट क्लास का रिश्तखोरा है जो उसकी भक्ति करेगा उसी का संसार बन्धन टूटेगा बाकी के सब नरक में डकेल दिये जावेंगे।

इस प्रश्न के उत्तर में भगवान् कृष्ण द्वैपायन श्रीमद्भागवत् में लिखते हैं कि भक्ति के द्वारा मोक्ष देने से ईश्वर रिश्तखोरा नहीं बनता किन्तु ब्यालु बनता है :

ये दामागारपुत्रान्प्राणान्वितमिदं परम् ।

दिव्या मां शरणं वाताः कथं तांस्वक्तुमसहे ॥

भगवान् का कथन है कि जो खी, मकान, पुत्र, प्राण, द्रव्यादि सुखसाधनों पर लात मार मेरी शरण आते हैं बतलाइये तो सही मैं उनको कैसे छोड़ दूँ और यदि मैं छोड़ दूँ तो वे फिर कहाँ के रहें! संसार में आज भी देखने में आता है कि जो जिसको शरण जाता है वह उसको रक्षा करता है और इस प्रकार से रक्षा करने वाले को कोई भ रिश्तखोरा नहीं कहता फिर भगवान् किस प्रकार रिश्तखोरे हो जावेंगे।

भोगेन पुण्यं कुशलैर्न पापं ।

कलेवरं काञ्चनैव हिन्वा ॥

कीर्तिः विशुद्धां सुरलोकगीतां ।

वितापमामेष्यसि मृतवन्धः ॥

भगवान् नृसिंह कहते हैं कि तुम्हारे जो पवित्र कर्म हैं उनको तो भोग कर के नारा करो और पाप कर्मों को पवित्र कर्म ईश्वराराधन से क्षय करो, तथा शरीर को बंध से छोड़ दो देवता जिसका गान करेंगे ऐसी पवित्र कीर्ति को विस्तार करके तुम मुझको प्राप्त होंगे।

अपूर्ण



## सगुण प्रेम प्याला

आइये इस ओर पदार्पण कीजिये। हाँ यही है उस प्रेम-सन्धु के व्यवहारिक नाट्यस्थल का तट यही है। इसी का नाम तो अन्तःकरण है। इस पर स्थिर होकर बैठो। अहा हा हा!!! देखिये! सामने अनन्त-आनन्द-सागर तरारें भर रहा है। उठिये! इसमें कूद जायें। ओह! आप डरते हैं। अच्छा, जानेदीजिये! इधर आये! वह देखो, विवेक की डोंगी बंधी है। वैसे नहीं तो ऐसे सही। आओ इस अनन्त-आनन्द-सागर में कुछ दूर तो डोंगी पर सवार होकर विहार करें। घबराइये नहीं, यहाँ कुछ भय नहीं है अजर अमर आत्मदेव स्वयं केवट हैं! सत्य-धारणा की बल्लियें हैं और अव्यभिचारिणी अन्विष्ट सुन्दरी मतिरानी इसकी पृबधिका हैं। यह देखो रत्न उदित स्वर्णपात्र इनके मृदुल कर कमलों में है। आप इससे ही भर २ कर अनन्त-आनन्द सागर का प्रेमचारि पिलार्येंगी। अहा हा हा!!! आनन्द की तरङ्गों पर नौका चल पड़ी।

आज पतिप्राणा सुन्दरी रानी-सुमति, नयनानन्द प्रद सुशोभन रंगीले वस्त्रोंसे और सुरभिमय मनोरम सुमनों से बने हुए प्राकृत-आभूषणों से सुसंस्कृता होकर, कवि हृदय को गुरगुरा देने वाली श्याम घटाओं के सदृश दायें बायें कृष्ण कुन्तल संवारें हुए, अपनी अनेक लुबीली सहचरियों

के मध्य से निकलकर समीप में विराजमान प्राणपति के समक्ष उपस्थित होती हैं। प्राण जीवन के वियोग में, रुद्राशा-मुत्री कृशतनु कुमुदिनी के लिये प्रेमसुधावर्षक पूर्णिमा का सुधांशु उदित हुआ विरहिणी की विरहतत संकुचितहृदयकलिकाओं को प्रस्फुटित करके सुधांशु की सुधामय किरणों ने अन्तर्निहित निराकारज्वाला को शांत किया। हृदयतंत्री से निकलने वाला स्वर द्वैत का परित्याग करके सम में लीन प्रणयी ने प्रणयिनी के सकोमल अधरामृत का पान किया। तथा अपनी अनन्य के सुनस्र गुरगुरे वक्षस्थल से वक्षस्थल मिला ही दिया।

× ÷ × + ×  
अब महारान-सुमति की आनन्द अवस्था इस क्षुद्र लेखनी से नहीं लिखी जा सकेगी। एक पतिव्रता स्त्री और एक स्त्रीव्रत धारी पुरुष के दाम्पत्यालिंगन में जो आनन्द होता है वह यदि अनुभव किया जासका है तो मतिरानी के आनन्द का भी अनुभव ही हो सका है, लेखन नहीं।

× × ÷ × ×  
प्रिय-मिलन प्राप्त प्रेमोन्मत्त सती-साध्वी मतिरानी स्वर्गीय भूरे में आरोहण करके आसीन होगई। प्रेमश्लेख की जयशोल शक-पूर्णमुक्ताओं के द्वारा ऊर्ध्वकर्पक सूत्रकी मर्थादित क्रिया से, प्राणनाथ की गाढालिङ्गन किये हुए अनन्त प्रेमाकाशमें उच्च उच्चकान लेंने लगी। नन्दनवन के न प्रस्फुटित स्वर्गीय सुमनों का सुरभित-समीर-स्पर्श यथा संभव-सक्ष्म सारी का आंचल उड़ाकर, मतिरानी



के कान्तिमान् नवनीत तम चिह्नण अनुगम सौन्दर्य  
पूर्ण सृदुल शरीर के दिव्याङ्ग की भांकी दिखाने  
लगा। अहा हाहा!!! अब इदयाकाश में आत्मा-  
नन्द के घन गर्जन कर रहे हैं। सजल श्याम घनों  
में पतिदेव घनरूपाम के कीट-मुकट की अपूर्व कान्ति,  
विद्युत्-दाम के समान दमक रही है। शीतल-मन्द  
पवन के साथ आनन्दामृतको फुहारें पड़ रही हैं।

अहा! हाहा!! गुदगुराहट! अद्भुत्-हृत्-कम्प  
पापाण-द्रावक-पवित्र-प्रेम!

भूला पर्याप्त बढ़ाकर बढ़ाने को किया से  
हाथ पैर खींच लिये गये। इस अब प्रारब्ध कर्म  
से स्वयं ही गतिमान है।

x x x x x

अहा! हाहा!! दृश्य, अपूर्व दृश्य। शान्त  
निस्तब्ध गाढव-अन्वकार में अद्भुत्-हृदयाकर्षक  
दिव्य-छवि-पुञ्जका अलीकिक दृश्य।

असत् में सत्, नस्ति में अस्ति। प्रेम प्रसुप्त  
मूक अवस्था में कैसी व्यक्त वाणी! समझा। पुनः  
आज मतिरानी गत विरहव्यथाओं का अनुभव  
आरम्भ करती है।

सुनो! सुनो!! स्पष्ट सुनो!!!

सिन्धु की लहरों के समान तरारि भरता  
हुआ अनन्द-राग, महत्वपूर्ण इतना कि जिसके  
अभिमान में निजत्व का बोध भी विलुप्त। घाह,  
खूब! परन्तु वह महावीर सैनिक की भांति अपार  
सैन्य दलकी पंक्तियें-चीरता हुआ निकलता है और  
विश्वके प्रत्येक कोने में सर्वत्र सहल-पहल मचा  
डालता है। मला वस्तुत्व छिप ही क्या तक सका  
है।

कौन है प्राण जीवन प्राणाधार? बस एक,  
केवल तू, और कौन? ये प्राणनाथ! दुनिया  
के लोग तेरे से गहें चाहें जितना अपरिचित परन्तु  
हे जीवनप्राण आनन्दपन! तेरे सिवा कहां से  
पासके है प्राण जीवन और आनन्द।

x x x x

कुल्लोग निजानुभवशून्य सुनो सुनाई वार्ते कह  
रहे हैं कि मिथ्या सब मिथ्या! नित्य प्रति जिन वार्तों  
को करते हैं वा जिस कार्य के लिये मनुष्य विवश  
किया गया है कि वह करे, वह सब मिथ्या। प्यारे  
की यह विभूति मिथ्या। छी:! अन्धेर!! भक्ति  
विन ज्ञान क्या! ज्ञान विन कर्म क्या! और कर्म  
ज्ञान हीन भक्ति क्या। ऐसे ही मानवों ने असीम  
आनन्द-पूर्ण सृष्टि को नीरस-अशान्त व अरुचिकर  
बना डाली है। अपने आप से धौराम जैसे उत्तम  
पुरुषों से मर्यादित प्रेम के साथ अपनी धर्मपत्नी  
का-बुद्धि का-आदर व स्वेच्छानुकूल आचरण तो किया  
जाता नहीं परन्तु अविद्यायश पारस्परिक नित्य के  
कलह से क्लेशित होकर प्रेमशून्य वैराग्य में डूब  
दिया जाता है कि मिथ्या सब मिथ्या। परन्तु इद-  
याकाश में होने वाली आकाशवाणी कुल औरही है।  
अन्तरैक्य का अनुभव इससे भिन्न है। चन्द्रमा में  
प्यारे का सुखामय सृदुल मन है। सूर्य में प्यारे  
के प्राण और पवन में उसकी अटखेलियां हैं। सुमनों  
की सुरभित गंध उसके सलोने श्याम शरीर की  
मन मुग्धकारिणी सुगंधि है। इसमें लेशमात्र सन्देह  
नहीं। क्यों? समझलो!

उनका शरीर अवसान होने पर भी जैसे  
उनको आज तक अमर सत्यमान कर आराध्य  
कनण्ड हुए हो उसही प्रकार इस दृश्य की भी सत्य



आनन्द रूप समझो। तब माता सत्य, पिता सत्य, बन्धु सत्य, भगिनी सत्य, मित्र सत्य, पत्नी सत्य, सब सत्य ही सत्य है। उपवन में कुसुमित सुमन व उसका मनोहर वर्ण सत्य और उनकी सुरमिमय गंध सत्य है। 'मि' भी सत्य और 'तू' भी सत्य है। क्योंकि व्यक्ति गत प्रेम से व व्यष्टि रूप सौन्दर्य से दृष्टि उठा करके समष्टि रूप सौन्दर्य पर दृक्पात करने के आरम्भिक अभ्यास में ही अनन्त प्रेम देव की विश्व विमोहिनी माधुरी मूर्ति का दर्शन होने लगता है। इन नेत्रों से भी और अपर से भी। क्योंकि यह व्यावहारिक सत्ता अव्यभिचारिणी मति रानी के समक्ष भ्रमात्मक नहीं वरन् प्यारे की पारमार्थिक सत्ता का परिवर्तित स्वरूप है। यह उसको छुपाने के लिये नहीं वरन् प्रकट करने के लिये है, वह आता है। शिशु रूप में इस आँगन में खेलता है। तब उसके घुंघराले केशों में वायु में लहराती हुई रेशम सी अलकों में मन डलक जाता है और वह कमल से लज्जिले शंभन नेत्रों पर गुञ्जाने लगता है, इस मनोहर बाल प्रभु की तुतलाती हुई वाणों से आनन्दावेश होजाता है। पुनः वही, भक्तमन चोर मधुर मुरली का तान छोड़ता है, तब स्वरनिकलते हैं।

अखण्डविश्व प्रेम में असद्-भाव को स्थान कहां? प्रेम और-आनन्द का वियोग कहां?

"मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनंजय !

मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥"

x x x x +

व्यक्तिगत स्वार्थमय प्रेम में आवद्ध मेरी अनेक बहिर्में स्वउच्छ्वसित विप्रेलीवायु से स्वयं निर्मल

जीवन भ्रष्ट करती हैं और संसार में पातिव्रत धर्म का पालन न कर व्यभिचार फैलाती हैं। वे आत्म देव के पवित्र पदपङ्क्तों से निर्गता त्रिपथगामिनी सुर ध्वनि के विशुद्ध त्रपतापहर प्रेममय जल में निमग्न नहीं हो पातीं और सर्वदा यत्र तत्र प्रेम की एकर विन्दु के लिये भटकती रहती हैं। इस ही हेतु से वस्तुत्व से अज्ञान बहिर्नों को आदर्शपतिता होकर, लौकिक आनन्द को मिटा देने वाला रुद्र-राग, समस्त को कम्पित करने वाला रुद्र दृश्य, असावधानों को सावधान करने वाला वीभत्स-नाट्य हृदय को हाथों से थाम कर नेत्रों में अतिवेग से उमड़ कर आप हुए विरहानल तप्त आसुओं को अवरोध कर सुनना पड़ता है देखना पड़ता है। उफ! आह!! देखी, निरपराधियों के शोणित की रीदनाद पूर्ण शोणित-सरिता।

+ x x x +

मिथ्या, समूल मिथ्या। आत्मा की विस्मृति में निजत्व बोधहीन संसार का अस्तित्व मिथ्या। संसार से आत्मा का सम्बन्ध मिथ्या। सम्बन्ध कैसा? यह तो मकड़ी कातना हुआ स्वयं अपना ही जाला है। भला स्वस्वरूप से बोधहीन होकर जीवन-युक्त मानवों में गणना कैसा? जीवन तो पशु भी रखते हैं। पुनः मनुष्य और पशु में क्या भेद? छी! कुल नहीं। बलेश, आपत्ति और दुश्चिन्ता पूर्ण जीवन, जीवन है या मृत्यु? क्या देह नाम ही तुम्हारी भाषा में मृत्यु है। लोग कहते हैं:- 'सूर्य निकल आया' मैं पूछती हूँ सुपा क्या था? यह सब बाह्यावस्था है, स्थूल दृष्टि है चर्ना सूर्य तो सर्वदा निकला ही रहता है। केवल कुल



समय के लिये यह आँखें उसको देख नहीं सकती। इस ही प्रकार देह नाश पर मृत्यु नहीं वरन् जीवोद्ध्य है। विनाश नहीं आनन्द पूर्ण नवजीवन है। पुनः-चिन्ता से दधकते हुये, आपत्तियों से भाञ्छा-दित मानव से मृत्यु कहीं अधिकतम श्रेष्ठ है।

x x x x

स्वतंत्रता और स्वधर्म एक नटिनी वेश्या पर कृत्रिम सौन्दर्य पर नष्ट कर दिया। चिन्कार तेरी इस बुद्धि पर। तेरा मिथ्या विचार है जो तू इसे स्वतन्त्रता समझता है। तेरा प्रत्येक कार्य परार्थीन हो यह स्वतन्त्रता कैसी? तेरा आनन्द और हो दूसरों के हस्तगत, परवश। फिर तेरा कैसा? यह स्वतंत्रता नहीं है वरन् उच्छूलता है। जिधर मुंह होगया उधर ही बिना साधन किया हुआ घोड़ा-मन-सरपट दौड़ा जा रहा है। तब अम्बारूद महाशय-जीव-की क्या दशा होगी यह जानलो! न जाने कैसे तं.क्षण कण्टकों में अन्धतम कूप में सवार की मिट्टी पलीद करेगा।

x x + x

ऐ भारतीय आत्मन्! व्यक्तिगतस्वार्थ के वश अपनी आवश्यकताओं को परार्थीन करके, जातीय जीवन की सूक्ष्म सुकोमल शृङ्खलाओं को छिन्न भिन्न करके प्रकृतिदत्त अधिकारों से भी घडिचत् हो बैठा! उफ! अब भी तेरी आँखें जातीय महत्व को नहीं देख सकती। दूसरों का आचरण भी तुझे कुछ नहीं सिखाता। इन्त! सावधान! महारानी सुप्रति तुझे चेतावनी दे रही है, सावधान हो! अन्धों की तरह स्वराज्य स्वराज्य मत पुकार।

यदि वास्तविक गतराज्य को प्राप्त करने की दार्ष्टिक उत्कण्ठा है तो इस अटल, निर्भ्रान्त सत्य नियम का पालन कर। सुनलो:-

‘सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वे भूतानि चात्मनि ।

समं परब्रह्मण्यवाप्ती स्वराज्यमधिगच्छति ॥’

यह ही एक, लोक और परलोक के लिये, शरीर और आत्मा के लिये उद्धारक और सुखकर नियम है। इसका निरन्तर अभ्यास कर। शरीर का स्वास्थ्य और शुद्धि आत्मिक विकास में सहायक है। और आत्म विकास की मूल शक्ति ‘मर्क’ शरीर को मन्दन बन में विहार करा देने वाली है। एक बाहर से भीतर जाती है तथा दूसरी भीतर से बाहर आती है। प्रथम व्यक्तित्व को जगाओ। आत्मयात्री बनो। क्योंकि अपने सुख में जाति का सुख और जाति के सुख में अपना सुख देखने वाला देश ही उत्थान को प्राप्त करता है। अन्यथा नहीं। वास्तव में जो नियम सूक्ष्म जगत् में प्रकाशक है वो ही स्थूल जगत् में है। मूल निचोड़ यह है कि आध्यात्मिक व आधिभौतिक स्वराज्य सिद्धि के साधकों के लिये एक ही अटल प्राकृतिक साधन है, और वह साधन यह है कि वे अपनी आवश्यकताओं को अपने आधीन करें। अपनी आवश्यकतायें अपने आधीन तब हो सकती हैं जबकि अपने आप में से व्यक्तिगतस्वार्थ भाव को मिटा दिया जाय। तब समझलो कि स्वराज्य मांगने की वस्तु नहीं वरन् साधन प्राप्य पदार्थ है।

x x x x x

प्रकृति की शीर निस्तब्धता को भेदन करके हृदयाकाश में स्पष्ट ध्वनि व्यक्त हो रही है कि-



ओउन्मत्त! प्रमोन्मत्त! भ्रमोन्मत्त, ओ कामिनी कांचन के मतवालो! इस विकट दृष्टि में स्वर्ग कहाँ? नर्क है नर्क। अनुभव में आने पर तड़फेगा। मानव जीवन विषयाधीन होने के लिये नहीं बरन् विषयों को आधीन करने के लिये है। भोग से नहीं बरन् युक्त आहार विहार से। तब क्यों तप्त उवाशमय नर्क की ओर अप्रसर होता है। संशय हो तो देखले। मेरी धोर नहीं बरन् अपनी कल्पित लड़कों की ओर। कितनी शान्ति है? क्यों लार टपकता है? किस-लिये दीन होता है? सबुद्ध हो! दृष्टि परिवर्तन करे और अपने नेत्रों से देख। तेरा नहीं यह प्यारे का मन्दिर है, उसकी सम्पत्ति है, तेरे बान्धव गण टेलोफोन के यन्त्र हैं वह प्यारा हो भिन्न २ केंद्रों से तेरे से बातें कर रहा है। चला आ इस ओर चला आ! तेरे लिये देवता लोग प्रेमपथ पर खड़े हुये प्रतीक्षा कर रहे हैं। इन से भी प्रलोमन मत जोड़, आसक्ति मत कर! चला चल! बरा बरा चला चल। अहा हा हा!!! प्रेम वर्षण, प्रेम ज्योति, प्रेम चन्द्र, प्रेम सिन्धु।

कौन खेल रहा है? ओहो! शिशु है। भला भोले शिशु! कबतक इस खेल में रमा रहेगा। करदे खेल का परित्याग करदे। ऐं! तू रीने लगा रो मत! आच्छा खेल और खूब खेल परन्तु मृत्तिकाके खिलांने से नहीं बरन् अमृत्तिका के खिलांने से।

अहा हा हा!!! कैसा अनुपम मनोहर सुन्दर है। सचही शिशु विनोदको अनन्य लीलापूर्णमूर्ति है! न टूटने का डर न फूटने का, न गलने का भय, न ज़लने का, तब ले संभाल और काँदा कर।

प्यारे अनन्त! तूने अपनी प्रणयिनी प्रिया-स्थिर बुद्धि-के साथ बहुत आनन्दविहार किया, खूब अह्विम रचनाएँ की परन्तु अब मुक्त कदों, लीन होने दे अपने में अभेद होने दे। सांसारिक आपत्तियों, अनन्य प्यारों के वियोग के प्रचण्ड विरहानल में अवर्णनीय वेदना, मित्र की शिकायत, शत्रु का हानिपूर्ण अहार इत्यादि सब विलीन होजायगा। भूलजा अपना पराया भूलजा और अद्वैत निद्रा में निद्रन्द्र होकर शयन कर।

अहा! हा!! हा!!! प्याला, अमृत बारि पूर्ण प्रेम प्याला, श्रीप्रेमाणन्द-जोहण-का पीयूष तारि - श्रीगीता-सतो साधुओं कमल लोचना चन्द्रमुखी मतिरानी के मृदुलकर-कमलों में छलकर रहा है। प्यारे पीपासु! पीले एक घूँट! यस एक घूँट, अनादि आनन्द की लालिमा के डोरे नेत्रों में भरने को एक घूँट पर्याप्त है। पानकर! और सर्वदा के लिये प्रेम धाम में शयन कर

(प्रेम-विह्वल शिशुः)

## वंशी वाले

[ ले० श्री मदनगोपाल 'सिंहल' ]

वंशी वाले तब बिना मुझसे रहा न जाय।  
बिन दर्शन प्रत्येक क्षण मन मेरा चबराय ॥  
मन मेरा चबराय नेत्र नित अश्रु बहाते।  
किन्तु दया फिर भी न द्यामिधि हो दिखलाते ॥  
बिना दर्शन जा रहे प्राण है इन्हे बघाले।  
आ राधा के संग सामने वंशी वाले ॥



## अपने शुभकर्मों को ईश्वर की भेंट करो ।

[ से० श्री स्वामी आत्मानन्द सरस्वती ]

ईश्वर ही सब का प्यारा तथा बड़ा है, इसमें उसे अच्छी से अच्छी वस्तु अर्पण करना चाहिये ।

संसार की प्रत्येक जाति के लोगों में अपनी अपनी शक्ति के अनुसार, अपने सम्बन्ध के अनुसार, और देश तथा कुल की प्रथा के अनुसार आपस में भेटे देने की रीत है, क्योंकि भेट देना स्नेह की निशानी है और वह भेट देने वाले की योग्यता के ऊपर निर्भर है । ऐसा होने से जब हम बाहर जाते हैं और वहाँ कोई अच्छी और नई वस्तु देखते हैं तब उसे अपने मित्रों को भेट देने के लिये ले जाने की इच्छा होती है । इस समय विद्वान् लोग विद्या की चीज पसंद करते हैं, धनी लोग खिलौना, घोड़ा या कुत्ता पसंद करते हैं, व्यवहार चतुर साधारण स्थिति के मनुष्य घर के लिये उपयोगी वस्तु पसंद करते हैं, गरीब खाने पीने की चीज पसंद करते हैं और भक्तगण भक्ति में सहायता देने की चीज पसंद करते हैं । इनमें से अधिकांश वस्तुयें अपने लिये नहीं किन्तु स्नेहियों के लिये होती हैं, क्योंकि इस रीति से स्नेह का बदला दिये बिना मनुष्यों के मन को शांत नहीं मिलता । मनुष्यों के मन में स्वभावतः ऐसा प्रेम होने से उन्हें अपने मित्रों तथा सगे सम्बन्धियों की ओर आकर्षित होना पड़ना है । इस आकर्षण के कारण ही मनुष्य स्त्रियों के लिये बहु मूल्य सांझियां खरीदते हैं, लड़कों के लिये कपड़ा व सुंदर खिलौना लाते हैं । सब के प्रेम कराने के लिये उनका योग्यता के अनुसार

वस्तुयें खरीद कर लाते हैं ।

सेठ नौकर तथा निकट सम्बन्धियों के लिये भी उनके स्नेह के अनुसार भेंट आदि देते हैं और यह दिया हुआ व्यर्थ नहीं जाता । हम प्रणाम करने हैं तो दूसरा योग्य मनुष्य आशीर्वाद देता है, हम यदि एक अंगुल भला करते हैं तो दूसरा हमारा स्नेही एक गज कर दिखता है । अपना स्त्रों को उसकी पसंद की हुई साड़ी देदो, तब देखो कि उसका आनंद और तुम्हारे ऊपर उसका प्रेम कितना बढ़ जाता है, लड़कों को खिलौना या मिठाई देदो, तब देखो उनका आनंद और तुमसे कैसे हिम मिल जाते हैं । हाकिमों के पास डालीलगाके फल भेजदो और तुम देखो कि वे तुम पर कैसी रूपा रखते हैं और नौकरों को त्योहारी दो तब देखो तुम्हारा काम वे कैसे कुशल से करते हैं ।

चैतन्य जीवों की तो क्या कथा जड़ पदार्थों को भी भेट देने उनसे अनन्त गुणा होकर मिलता है । देखो, पृथ्वी में बीज डाल देने से कितना बढ़कर बीज मिलता है । प्रिय पाठकी, भेटमें ऐसा जादू है इससे हम अपने संबंधियों को भेट देने के लिये अच्छी अच्छी वस्तु पसंद करते हैं ।

अब विचार करो जब हम अपने सगे संबंधियों के इतना सख करते हैं और बहु मूल्य वस्तुयें पसंद करके भेट देते हैं तब जो बड़े से बड़ा, भले से भला और प्यारे से भी अति प्यारा है जो प्राणों का भी प्राण, मन का भी मन, बुद्धि की भी बुद्धि है जिसने हमें जीवन दिया है और जो हमें सुख



साधन दे रहा है, हमारी सब क्रियायें जिसके हाथ में हैं चाहे वह अभी मृत्यु को भेज कर प्राण खींचले तो मुखका प्रास मुखमें ही रह जाय, खाट पर सोते ही रह जाय, हाथ की कलम हाथ में ही रह जाय, हमारी मौत सुधारना या बिगाड़ना जिसके अधिकार में है और जो स्वर्ग का कर्ता तथा मोक्ष धाम का मालिक है।

“इंशावास्वमिदं सर्वं यत् किञ्च जगत्यां जगत् ।”

“येन सर्वमिदं ततम्”

“यतो इमानि भूतानि जायन्ते येन ज्ञानानि जीवन्ति यद्यन्वभिसुविशन्ति” “अन्मापस्य यतः” “एकान्तं स्थितो जगत्” ॥

कहाँ तक कहा जावे श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास सभी यही बतला रहे हैं कि ईश्वर से अतिरिक्त सब मिथ्या और नाशवान् है। पातञ्जलि भगवान् सूत्रकार अपने रचित योगसूत्र में कहते हैं। “तत्र निरतिशयं सर्वज्ञ बीजम्, पूर्वेणामपि गुरुकालेन न वच्छेदात्” “अतस्तेषामपि भगवानेक एव गुरुरीश्वरः” “ज्ञः काल कालः” इति श्रुतेः । अनेनेश्वरस्य महाप्रभाव-स्वमुक्तं भवति”

सर्वज्ञता तृप्तिरनाद बोधः, स्वतंत्रः॥ नित्यमलुप्तशक्ति । अनंत शक्तिश्च विभोर्विधिज्ञाः, पदादूरंगानि महेश्वरस्य वायु पुराण १२-३१

ज्ञान वैराग्यमैश्वर्यं तपः सत्यं क्षमा एतितः ।  
 स्पृष्ट्वा मातृसंबोधो ह्यविष्णुत्वमव च ॥  
 अव्ययानि दर्शयानि नित्यं तिष्ठन्ति त्रिकरे”  
 वायुपुराण १०-१०

उपयुक्त प्रमाणों से यही निश्चय होता है कि उससे बढ़कर और कुछ नहीं है यानी ईश्वर ही सर्वथा पूजनीय है उसका पूजन करने से सर्वत्र

पूजा हुआ ही समझना । क्योंकि जगत् उसी का स्वरूप है । जैसे एक राजा के वश में करने से सर्व प्रजा स्वयं वश में हो जाती है इसी प्रकार एक परमात्मा को भेट करके प्रसन्न करने से सर्व प्रसन्न हुए जानो । इसमें श्रुति प्रमाण है-

“सवा अवमात्मा सर्वेषां भूतानामधिपति सर्वेषां भूतानां राजा तद्यथा स्थनामी च स्थनेमीश्वराः सर्वे समर्पिता एवमेवास्मिन्नात्मनि सर्वाणि भूतानि सर्वे देवाः सर्वे लोकाः सर्वे प्राणाः सर्व एव आत्मानः समर्पिताः ।

भावार्थ- महर्षि याज्ञवल्क्य अपनी प्रिय भार्या विदुषी मैत्रेयी के प्रति कहते हैं कि हे मैत्रेयि देवि ! यही परमात्मा सब भूतों का अधिपति है यही सब प्राणियों में प्रकाश स्वरूप है । जैसे रथ चक्र की नाभि में और पारधि में सब अरे लगे रहते हैं, इसी प्रकार इस परमात्मा में सब ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यंत सब भूत सब अग्नि आदि देवता, सब भूरादि लोक, सब वागादि इन्द्रियां, सब जीव समर्पित रहते हैं, यानी कोई बिना आधार परमात्मा के रह नहीं सकता यानी इसी से सबकी उत्पत्ति है, इसी में सब का लय है, इसी में सब की स्थिति है, ऐसा यह परमात्मा सब का आत्मा है यही तुम्हारा स्वरूप है ।

इसलिये उपयुक्त कथन से उस अनन्त ब्रह्मांड के नाथ सर्व शक्तिमान् परम रूपालु परमात्मा को हमे कैसी उत्तम से उत्तम वस्तु भेट करनी चाहिये इसका तो विचार करो ! प्रभु को अर्पण करने योग्य हमारे पास दूसरी कौनसी वस्तु है ? प्रिय पाठको ! अपने सब शुभ कर्मों को उसे अर्पण करदो वह एक से अनेक गुणा हो जायगा । ऐसा करने में हमारा कुछ खर्च नहीं होता, कोई विशेष परिश्रम



नहीं करना पड़ता, कोई खास समय नहीं देना पड़ता है,

‘सर्वादि सुकम सबदिन सब देशा, सेवत सादर समनक्लेशा’

कोई खास अद्भुत क्रिया नहीं करनी पड़ती केवल महान् ईश्वर का अपरिमित महिमा को जान कर, उसकी शरण में जाकर तथा उसकी इच्छानुसार चलकर, (उसकी इच्छा श्रुति स्मृतियों आदि में वर्णित है) फल का इच्छा का त्याग करके और प्रभु को प्रसन्न करने के लिये कर्म करने को ही ब्रह्मार्पण कहते हैं और हमारी यही भेट ईश्वर स्वीकार कर सकता है। क्योंकि सब उसकी ही प्रभुता ही चरणों में से तो गंगाजी निकली है तो बताइये इसके सिवाय क्या भेटकर कर सकते हैं। इससे एक का अनेक गुना फल प्राप्त करने के लिये अपने सब शुभकर्मों का महान् ईश्वर को अर्पण करदो। अर्पण करदो!! करदो!!! इसांके लिये ही मनुष्य जन्म धारण किया है अर्पण करदो। करदो।। अर्पण अवश्य ही करदो!!! च्यूको मत, नहीं तो अंतमें बड़ा पश्चात्ताप करना पड़ेगा। जैसे यहाँ किसी साहूकार के कुछ जमाकर दो तो वह सूद समेत देता है तो विचारिये तो सड़, उस परमात्मा के यहाँ जमा करके क्या घाटा रहेगा यानी नहीं रहेगा दिन दूना रात चौगुना बढ़ेगा, निस्संशय बढ़ेगा क्योंकि वह साहूकारों का साहूकार है। इससे बिना विचारे अर्पण अवश्य करदो। यदि तुम अपने पास रखेंगे तो कोई ठगलेगा बड़े बड़े ठग इसी काम के लिये फिरते हैं परन्तु वह सबसे बलवान हैं वहाँ ठगोंका वश नहीं चलेगा।

## कहां हूँ

[ले० श्री प्रभुरत्न “भारद्वाज”]

स्वामिन्! मैं तुझे कहां हूँ तू कहां है। ग्रीष्म काल की तीव्र शूला के पतित होते समय क्या मैं निकुञ्जों में जाऊँ? अथवा बसन्त का मनोहारिणी ऋतु में आम्र बौरों की सुगन्धि से प्रफुल्लित होता हुआ क्या किसी वृक्ष पर कोकिला के कलरव के तुल्य तेरी बाँण के स्वर से तृप्त होने के लिये यत्र तत्र मारा मारा फिरूँ। अथवा शीत काल के प्रखर शीत से जड़जड़ाता हुआ तेरी बंसों व मुसकान की रमक हूँडता वृन्दावन की गलियों में डोळूँ।

गोचिन्द! कहते क्यों नहीं कि इस वर्षा के दिन और अन्धकारमय रात्रि के समय जब निद्रा देवी का साम्राज्य मनुष्यों के मस्तिष्क रूप प्रदेश में होगया है, मैं चपला के चंचल चमत्कार को देखता चोर का नाई चारों ओर तेरे दृष्टि रूप द्रव्य की खोज में निवळूँ।

परन्तु नहीं मधुसूदन नहीं याद आया कि तुम तो इस सन्ध्या के समय जब शीतल मन्द सुगन्धि त्रिविध समीर प्रवाहित हो रही है यमुना के रमणीय तट पर रात्रिका और अन्य गोपिकाओं के रंग में रगे हूँगे। ऐसे समय मैं आपके निकट न आऊँगा, आपको कुछ न कहूँगा क्योंकि यह आपके विलास की बेला है।



अब क्या करूं जाऊं कहाँ दूँ या हुआ हूँ शोक में ।  
 हुँदा तुझे इस लोक में भुवलोक में परलोक में ॥  
 हे पतित पावन ! पार तेरा पर नहीं मैं या सका ।  
 अब हुँदने की है नहीं सामर्थ्य मुझ में मैं क्या ॥

परन्तु हे पुरुषोत्तम ! मैं भूला मैं माया के  
 घोर अन्धकार में फँस गया, मैं तुझे हुँदने के लिये  
 कहीं न जाऊँगा । मैं तेरे लिये यह कठिन कष्ट  
 कदापि सहन न करूँगा । मुझे ज्ञान हुआ और  
 अज्ञान का पर्दा दूर हुआ । भगवन् ! आप अन्तर्यामी  
 हैं, घट घट को जानते हैं, आपतो सदैव मेरे निकट  
 रहते हैं । आप सर्वत्र हैं, एक कण से लेकर पर्यन्त  
 पर्यन्त आप सब में विश्राम हैं ।

जनार्दन ! आपने स्वप्न फाड़ कर प्रह्लाद को  
 प्रबल दुःख पर्योधि में डूबते हुए से पार पहुँचाया  
 था । ग्राह से प्रसित होने पर गज की गर्जना सुन  
 गहड़ बाहन तजि आपने नमी पैरों गमन किया था  
 और उसे निज धाम पहुँचाया था ।

हे मनमोहन ! ये तो आपके भक्त थे, आपने  
 तो एक बार नाम लेने से परम पापियों को भी  
 निज धाम दिखा दिया । जिस समय मुझे पापी व  
 अधम अज्ञामिल और गणिका का स्मरण आजाता  
 है तो मैं आनन्द सागर में गोते लगाने लगता हूँ,  
 मेरे रोमाञ्च खड़े हो जाते हैं, नेत्रों से अभुधारा  
 प्रवाहित होने लगती हैं ।

वे पापात्मा जो जन्म पर्यन्त पाप और प्रप-  
 चता के पात्र थे आप के पतित पावन नाम लेने से  
 परम पद को प्राप्त हुए । हे सच्चिदानन्द ! मैं भी  
 अब उसी अघोर आशा का अंचल पकड़ आनन्द  
 और उमङ्ग से आप का स्मरण करता रहूँगा । मुझे

पूर्य आशा है कि आप इस अधम को भी अपने  
 अन्तराल से अङ्गीकार करेंगे ।

दत्त पर अब हो दया अन्तिम विनय स्वीकार हो ।  
 प्रभु पाद में प्रीति सदा हो प्रेम का उद्धार हो ॥  
 पाप सु होवे परे अछ सख का सन्वार हो ।  
 दमन इन्द्रिय होवे शशी यम नियम व्यवहार हो ॥

## सफल जीवन

[ले० श्री शोभाराम जी धेनुसेवक]

रघुवर के प्रेम रस में, जो जन पगे हुये हैं ।  
 जीवन सफल है उनके, भय भ्रम भगे हुये हैं ॥१॥  
 हे धन्य वे धरा पर, जो जानते रमण के ।  
 अनुराग हागवर में, चित्त से लगे हुये हैं ॥२॥  
 कौशल किशोर उनके, काटेंगे कलेश बन्धन ।  
 चिन्ता हरण की चितवन से जो ठगे हुए हैं ॥३॥  
 सोया हुआ है सब जग, अज्ञान की निपा में ।  
 रघुवर अनन्य जन ही, जग में जगे हुए हैं ॥४॥  
 हे धन्य वे जो पाकर, नर दंड देव दुर्लभ ।  
 परलोक साधना में, चित्त से लगे हुए हैं ॥५॥  
 रघुवीर का ही जग में, है सत्य नह नाता ।  
 माते अनिघ जग के, किस के सगे हुए हैं ? ॥६॥  
 श्रीराम प्रेम निधि के, जो मीन हैं सुखी वे ।  
 वे हैं दुर्भी जो विषवानक से दगे हुए हैं ॥७॥  
 मंगल भवन हरी के जो रंग में रंगे हैं ।  
 सौभाग्य सँकर सुकृत, उन के उगे हुए हैं ॥८॥



## भजन

ब्रजभूमि मोहिनी में जानी ।  
 मोहन कुंज मोहन वृन्दावन,  
 मोहन जमुना पानी ॥ १ ॥  
 मोहन नारि सकल गोकुलकी,  
 बोलति अमरत बानी ।  
 श्रीभटके प्रभु मोहन नागर,  
 मोहनि राधा रानी ॥ २ ॥  
 २  
 सेव्य हमारे हैं पिय प्यारे,  
 वृन्दा विपिन बिलासी ।  
 नंद-नंदन वृषभानु नंदनी  
 चरन अनन्य उपासी ॥ १ ॥  
 मत्त प्रनय बस सदा एक रस,  
 विविध निकुंज निवासी ।  
 श्रीभट जुगुल रूप बंलंबट,  
 सेवत सब सुखरासी ॥ २ ॥  
 ३  
 स्यामा स्याम पद पावै सोई ।  
 मन बच क्रम करि सदा नित्य जेहि,  
 हरि-गुरु-पदपंकज रति होई ॥ १ ॥  
 नंदसुवन वृषभानुसुता पद,  
 भजै तजै मन आनै जोई ।  
 श्रीभट अटक रहे स्वामीपन,  
 आन व्रतै मानै सब लोई ॥ २ ॥  
 ४  
 जुगुलकिसोर हमारे ठाकुर ।  
 सदा सवेदा हम जिनके हैं,  
 जनम जनम घर जाये चाकर ॥ १ ॥

चूक परै परिहरै न कबहुं,  
 सबही भांति दयाके आकर ।  
 जै श्रीभट प्रगट विभुजन में,  
 प्रनतनि पोषत परम सुधाकर ॥ २ ॥  
 ५

बलि-बलि धीराधे-नंदनंदना ।  
 मेरे मनकी अमित अघटना को जानै तुम बिना ॥  
 भलेई चारु चरन दरसाये हृदय फिरिहीं वृन्दावना ।  
 जै श्रीभट श्यामा स्यामरूप पै निःछावर तन मना ॥  
 ६

बसौ मेरे नैननिमें दोउ चन्द,  
 गौर बदन वृषभानुनंदनी,  
 स्याम चरन नंदनन्द ॥ २ ॥  
 गोकल रहे लुनाय रूप में,  
 निरगत आनंदकन्द ।  
 जै श्रीभट प्रेमरस बन्धन,  
 क्यों छुटै हृद फन्द ॥ २ ॥  
 ७

हमारी सब ही बात सुधारी ।  
 रूपा करी श्रीकुंजविहारिनि,  
 अरु श्रीकुंजविहारी ॥ १ ॥  
 राक्यो अपने वृन्दावन में,  
 जिहि ठां रूप उजारी ।  
 नित्य केलि आनंद अखंडित,  
 रसिक संग सुखकारी ॥ २ ॥  
 कलह कलेस न व्यापे इहि ठां,  
 ठौर बिभू तें न्यारी ।  
 नागरिदासहि जनम जितायो,  
 बलिहारी बलिहारी ॥ ३ ॥



भक्ति बिन है सब लोग निखट्ट ।  
 आपसमें लड़िये भिड़ियेको,  
 जैसे जंगी टट्ट ॥ १ ॥  
 नित उनकी मति भ्रमत रहत है,  
 जैसे लोलुप लट्ट ।  
 नागरिया जगमें वे उछरत,  
 जिहि विधि नटके बट्ट ॥ २ ॥

सखि, मेरे मनकी को जाने ।  
 कासों कहीं सुने जो चित दे,  
 हितकी बात बखानै ॥ १ ॥  
 पेसो को है अन्तरजामी,  
 तुरत पीर पहिचानै ।  
 नारायन जो बीत रही है,  
 कब कोई सच जानै ॥ २ ॥

मोहन बसि गयो मेरे मन में ।  
 लोक-लाज कुल-कानि लूटि गई,  
 याकी नेह लगनमें ॥ १ ॥  
 जित देखों तितही वह दीखै,  
 घर-बाहर आंगनमें ।  
 अंग अंग प्रति रोम रोममें,  
 छाई रह्यो तन मनमें ॥ २ ॥  
 कुण्डल भलक कपोलन सौं है,  
 बाजूबन्द भुजनमें ।  
 कंकन कलित ललित बनमाला,  
 नूपुर धुनि चरननमें ॥ ३ ॥  
 चपल नैन, झकुटी धर बाँकी,  
 टाढो सघन लतनमें ।

नारायण बिन मोल बिकी हों,  
 याकी नेक हँसनमें ॥ ४ ॥

११

मनमोहन जाकी दृष्टि परत,  
 ताकी गति होत है और और ।  
 न सुहात भवन, तन असन बसन,  
 बनही को धावत दौर दौर ॥ १ ॥  
 नहिं धरत वीर, हिय बिरत पीर,  
 ब्याकुल है भटकत ठीर ठीर ।  
 कब अंसुवन भर नारायण मन,  
 भाँकत डोलत पौर पौर ॥ २ ॥

१२

प्रीतम, तू मोहि प्रानते प्यारो ।  
 जो तोहि देखि हियो सुख पावत,  
 सो बड़ भागनवारो ॥ १ ॥  
 तू जीवन धन सरबस तू ही,  
 तू ही दूगनको तारो ।  
 जो तोको पलभर न निहारुं,  
 दीखत लज अंधियारो ॥ २ ॥  
 मोद बढ़ावनके कारन हम,  
 मानिनि रूपहिं धारो ।  
 नारायन हम दोउ एक हैं,  
 फूल सुगंध न न्यारो ॥ ३ ॥